स्वर्गस्थ पितृदेव

||

की

||

पावन स्मृति

में

"जिसने न माना कभी लोहा तुच्छ मृत्यु का
जीने का वही तो अधिकारी है जगत् में ।"

भूमिका

संस्कृति शब्द अंग्रेजी के कल्चर शब्द के आधार पर भारतीय भाषाओं में प्रचलित हुआ है। कहते हैं, मानसिक खेती के अर्थ में प्रथम बार 'कल्चर' शब्द का प्रयोग लार्ड बेकन ने किया था। जिस प्रकार खेती के लिए जमीन तैयार करते समय कंकड़-पत्थर तथा अन्य अनावश्यक वस्तुओं को दूर कर दिया जाता है ताकि उसमें बीज डालने पर अच्छी फसल हो सके, उसी प्रकार मनुष्य के स्वभाव में, उसकी मनोवृत्तियों में जो संस्कार, जो परिमार्जन अथवा परिष्कार होता है उसे संस्कृति कह सकते हैं। जहाँ संस्कृति है वहाँ उदारता के अवश्य दर्शन होंगे। बँधे हुए तालाब का पानी गँदला हो जाता है, स्वच्छ पानी के लिए मुक्त प्रवाह आवश्यक है-जो मनुष्य अपने संकीर्ण स्वार्थों के घेरे में आबद्ध रहता है, उसकी मनोवृत्ति भी दूषित ही समझिये। ऐसे व्यक्ति को हम संस्कारी व्यक्ति नहीं कह सकते। जिस प्रदेश में एक भी संस्कार-संपन्न मानव विचरण करता है, उस स्थान का वातावरण ही सुरभित और आलोकित हो उठता है। दूसरों की भलाई करने में जहाँ मनुष्य को सुख मिलने लगता है, वहाँ वह जंगली पाशविकता के मार्ग को छोड़ कर संस्कृति के मार्ग में पदार्पण करता है। पशुओं में जिस तरह स्वार्थ की प्रबलता देखी जाती है, उस तरह संस्कार-संपन्न मानव में नहीं। वस्तुतः देखा जाय तो मानवोचित गुणों का विकास ही संस्कृति का प्रमुख लक्षण है।

—दो—

सभ्यता और संस्कृति इन दो शब्दों के तारतम्य पर भी विचार कर लेना आवश्यक है। कुछ लोग समानार्थक मान कर इनका प्रयोग करते देखे जाते हैं किन्तु दोनों शब्दों में बड़ा अन्तर है। सभ्यता यदि देह है तो संस्कृति शरीर के भीतर रहने [illegible]। सभ्यता यदि पुष्प है तो संस्कृति है उसके भीतर [illegible] सुगन्ध। एक व्यक्ति अपने मस्तिष्क की सहायता से

होने पर टैंक, वायुयान यहाँ तक कि परमाणु बम भी चाहे जितनी संख्या में तैयार किये जा सकते हैं किन्तु कहाँ है वह फैक्टरी जहाँ मीराँ, प्रताप और पाबू की सजीव प्रतिमाएँ आर्डर देकर बनवाई जा सकें ? अनन्त मानव-समुदाय की शक्ति का एक साथ प्रयोग करके भी टैगोर, बुद्ध और शंकर आदि का स्वेच्छा से निर्माण नहीं किया जा सकता। लाखों, लाखों ही क्या असंख्य रामा-श्यामाओं को मिला कर भी राम और कृष्ण नहीं बनाये जा सकते। सभ्यता से संबन्ध रखने वाली वस्तुएँ यदि एक बार बन गयीं तो सारे संसार में फैल जाती हैं और उनका सहज ही नाश नहीं हो पाता किन्तु विभिन्न संस्कृतियों के संघर्ष तथा परतन्त्रता के कारण संस्कृति के विलुप्त अथवा विकृत होने की आशंका बनी रहती है। इस दृष्टि से देखे जाने पर सांस्कृतिक रक्षा का प्रश्न सबसे महत्त्वपूर्ण हो जाता है। संस्कृति अथवा मानवोचित गुणों को नष्ट कर यदि हम सारे संसार का राज्य भी प्राप्त करलें तो वह भी किस काम का ? इसीलिए महात्मा गाँधी जैसा सुसंस्कृत मानव अहिंसक साधनों द्वारा स्वराज्य-प्राप्ति की अपील करता है। सच तो यह है कि संस्कृति-लोप से बड़ी हानि इस दुनिया में कोई नहीं।

किन्तु संस्कृति तो एक अमूर्त भाव है, उसके स्वरूप का निर्णय कैसे हो ? सभी देशों में ऐसे महापुरुष उत्पन्न होते हैं जो मानवोचित गुणों को अपने जीवन में चरितार्थ कर संस्कृति का सच्चा स्वरूप खड़ा कर जाते हैं। राजस्थान में भी ऐसे अनेक

महापुरुष हुए हैं जिन्होंने बलिदान, स्वामिभक्ति, उदारता तथा प्रतिज्ञा-पालन का दिव्य आदर्श संसार के सामने रखा है। गुणों की प्रशंसा करने वाले और अवगुणों की निर्भीकतापूर्वक भर्त्सना करने वाले कवियों का भी यहाँ अभाव नहीं रहा। राजस्थान में इस प्रकार के असंख्य दोहे और गीत प्रचलित हैं जिनमें यहाँ के युद्धवीरों, दयावीरों और दानवीरों की गौरव-गाथा का उल्लेख हुआ है। जिन घटनाओं में यहाँ के चारणों को मानवोचित गुण का निदर्शन दिखलाई पड़ता उन्हें वे गीत और दोहों के रूप में जड़ दिया करते थे। ये पद्य चारणों की जबान पर ही न रह कर सर्वसाधारण की जबान पर आ जाते थे। बहुत से दोहे तो ऐसे मिलते हैं जिनके निर्माताओं का कोई पता नहीं चलता किन्तु फिर भी जन मानस की छाप उन पर अंकित होने से वे अत्यन्त लोकप्रिय हो गये हैं। किन्तु इसका यह अर्थ न समझा जाय कि राजस्थान के चारण विरुदावली बखानने वाले निरे चाटुकार थे। वे जब कभी कायरता, कृपणता अथवा अन्य किसी प्रकार का अनौचित्य देखते तो अपने 'विसहरों' (निन्दासूचक छन्दों) द्वारा उसकी भर्त्सना किये बिना नहीं रहते थे। जिस समाज में बुरे को बुरा कहने वाला नहीं होता, उस समाज का पतन हो जाता है। वाल्मीकि रामायण की सीता ने इसी बात को लक्ष्य में रखते हुए रावण से कहा था—

नूनं न ते जनः कश्चिदस्मिन्निःश्रेयसि स्थितः
निवारयति यो न त्वां कर्मणोऽस्माद्विगर्हितान ॥

इह संतो न वा सन्ति सतो वा नानुवर्तसे
यथा हि विपरीता ते बुद्धिराचारवर्जिता ॥ (सुन्दरकाण्ड)

अर्थात तुम्हारे कल्याण की कामना करने वाला यहाँ कोई देखलाई नहीं पड़ता। यदि होता तो क्या वह तुम्हें इस घृणित कर्म करने से रोकता नहीं ? अरे, यहाँ संत क्या हैं ही नहीं अथवा संतों के मार्ग का तुम अनुसरण ही नहीं करते ? तभी तो तुम्हारी विपरीत बुद्धि आचार-विहीन हो गई है।

राजस्थान में ऐसी असंख्य ऐतिहासिक किंवतन्तियाँ प्रचलित हैं जिनसे यहाँ की संस्कृति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। कुछ जनश्रुतियाँ तो ऐसी हैं जिनको सुन कर तबीयत फड़क उठती है और हृदय में उदात्त भावनाओं का संचार होता है। अतती की स्वर्णिल स्मृति में स्वभावतः ही बड़ा आकर्षण पाया जाता है और फिर उस राजस्थान का तो कहना ही क्या जिसका महिमामय अतीत अनेक मानवोचित गुणों के लिये आज भी स्फूर्ति और प्रेरणा प्रदान कर सकता है। सांस्कृतिक मंदिर की अखण्ड ज्योति को जगाये रखने में राजस्थान के चारणों ने जो महत्त्वपूर्ण योग दिया है, उसके स्मरण-मात्र से ही चित्त पुलकित हो उठता है।

ब्राउनिंग ने अपनी एक कविता में कहा है कि जीवन भर में संघर्ष करता रहा हूँ किन्तु मेरी अन्यतम इच्छा है कि हे मृत्यु ! जब कभी भी तू आवे, चुपके चुपके आकर मेरा प्राणान्त न कर

डालना, प्रत्यक्ष होकर मुझसे युद्ध करना। मैं तो जूझता ही रहा हूँ, यह एक युद्ध और सही। मृत्यु से लोहा लेने की इस वीर भावना की बड़ी प्रशंसा की जाती है और वस्तुतः यह सराहनीय है भी, किन्तु ब्राउनिंग को ही यदि यह ज्ञात होता कि भारतवर्ष में राजस्थान जैसा एक ऐसा अद्वितीय प्रान्त भी है जहाँ मृत्यु को त्यौहार के रूप में मनाया जाता है; धारा-तीर्थ में स्नान करना जहाँ परम पुण्य और पवित्र कर्तव्य समझा जाता है तो निश्चय ही उनकी वाणी प्रफुल्लित होकर प्रशंसा के बहुमुखी उद्‌गारों में फूट पड़ती। राजस्थान का यह मरण-त्यौहार तो एकदम नवीन है और यह कोरी कवि-कल्पना नहीं—यह एक ऐसा समुज्ज्वल ऐतिहासिक तथ्य है जिस पर सहस्रों सुन्दर भावनाएँ भी न्यौछावर की जा सकती हैं। राजस्थानी साहित्य के आलोक में उस अतीत युग का दर्शन कर इस मरण त्यौहार का आनन्द तो उठाइये—

आज घरे सासू कहै, हरख अचानक काय।
वहू वलेवा हूलसै, पूत मरेवा जाय॥

अर्थात् सास कहती है कि आज घर में यह अकस्मात् हर्ष कैसा? ओह, अब उन्हें मालूम हुआ कि पुत्र धारा-तीर्थ में स्नान करने जा रहा है और पुत्र-वधू सती होने को हुलस रही है। देश की बलिवेदी पर जब पुत्र अपने प्राणों को न्यौछावर कर देता था तब वीर-प्रसविनी माता को पुत्र-जन्म से भी अधिक हर्ष का अनुभव होता था—

सुत मरियो हित देस रै, हरख्यो बन्धु समाज।
माँ नहँ हरखी जनम दे, जितरी हरखी आज॥

रण-चंडी का रास रच कर जहाँ मरण-महोत्सव मनाया जाता था, पुत्र को स्तन-पान कराते समय जो सिन्धु राग से आनन्दित हुआ करती थीं, कृपाण लेकर दरवाजे से आगे बढ़ जो डाकुओं को ललकारा करती थीं, जो कुल की मान-मर्यादा की रक्षा के लिए जौहर की ज्वाला में जीवित जल जाया करती थीं, जो हमेशा उठ कर भगवान् भास्कर को इस प्रार्थना के साथ अर्घ्य देती थीं कि हे सविता! मेरी कोख को कभी न लजाना, जो अपने स्तनों से ऐसे आग के टुकड़ों को पैदा करती थीं कि दिग्पालों को ललकार कर जिनके पैर बढ़ाते ही पृथ्वी काँप उठती थी

धरतां पग धर धूजती, दागलतां दिगपाल।
जणती रजपूताणियाँ, थण थी झालबँबाल॥

कहाँ हैं आज वे नारियाँ जो 'इला न देणी आपणी' की लोरी देती हुई पलने में ही पुत्र को इस मरण-महोत्सव का महत्त्व बतला दिया करती थीं? राष्ट्रीय जागरण के इस युग में आज की नारी राजस्थान की उस वीर नारी से क्या निर्भीकता का पाठ न सीखेगी?

श्री रवि बाबू ने अपने काव्य द्वारा मृत्यु को गौरवान्वित किया जीवन की पूर्ति के रूप में उन्होंने जो मृत्यु का चित्रण किया

है, वह उनकी बड़ी देन समझी जाती है किन्तु फिर भी वह दर्शन शास्त्र ही रहा। गुरुदेव ने बतलाया कि मृत्यु किसी भी प्रकार डरने की वस्तु नहीं, वह तो जीवन के अनन्त प्रवाह में एक विश्राम मात्र है, माता के एक स्तन से हट कर दूसरे स्तन के लग जाना है। मृत्यु के इस तत्त्वज्ञान का जैसा मूर्तिमन्त रूप राजस्थानी साहित्य में मिलता है उस पर केवल राजस्थान ही नहीं, समूचा भारतवर्ष गौरव से अपना मस्तक ऊँचा कर सकता है। राजस्थान के इन लाड़ले सपूतों ने मृत्यु के साथ जो खिलवाड़ किया था उससे स्वयं मृत्यु भी भयभीत हो गई होगी ! ❀

शौर्य और पराक्रम की जैसी अद्भुत कल्पना राजस्थान के कवि की लेखनी से प्रसूत हुई है उसको पढ़ कर आज भी हमारी बुद्धि चकरा जाती है। एक योद्धा रणाङ्गण में शत्रु-सेना से लोहा लेता रहा। युद्ध करते करते उसका मुण्ड धराशायी हो गया किन्तु फिर भी वह कबन्ध के रूप में लड़ता रहा और उसने सारी सेना का सफ़ाया कर दिया। योद्धा का घोड़ा जब उस वीर के कबन्ध को सही सलामत लेजाकर गृह-द्वार पर जा खड़ा हुआ तब उसकी स्त्री क्या देखती है कि

भड़ बिण माथे जीतियो, लीलो घर ल्यायोह।
सिर भूल्यो भोलो घणों, सासू रो जायोह॥

❀'कायरों की मृत्यु साँस-साँस पर होती है
काँपता है मरण पराक्रमी की छाया से !' (आर्यावर्त)

पत्नी कहती है कि मेरी सास का पुत्र भी कितना भोला है—यह अपना सिर ही रणाङ्गण में भूल आया !! इस दोहे को अस्वाभाविक कह कर कोई इसका उपहास न करे—सिर पर मँडराती हुई मृत्यु की अवहेलना करने वाली पत्नी की इस उक्ति में पति के असाधारण शौर्य पर हर्षपूर्ण आश्चर्य की व्यंजना जिस नाटकीय चित्रात्मकता के साथ हुई है वह अद्भुत है, हाँ, नितान्त अद्भुत है !

किन्तु क्या आपने कभी सोचा है कि राजस्थान के ये खिलाड़ी मृत्यु जैसी भयंकर वस्तु के साथ इस प्रकार का खेल कैसे खेल सके ? प्राणों का बलिदान कोई हँसी-खेल नहीं है, यह तभी संभव है जब प्राणों से भी प्यारा कोई महान् आदर्श सामने हो। किसी प्रबल वेगमयी, बलवती एवं स्फूर्तिदायिनी भाव-धारा से अनुप्राणित हुए बिना मृत्यु का निर्भीकतापूर्वक विराट् आलिंगन कभी सम्भव नहीं हो सकता। यदि ऐसा न हो तो किसी को क्या पड़ी है जो मृत्यु की विभीषिकाओं से खेले ? स्वदेश और स्वधर्म की रक्षा के निमित्त राजस्थान ने बड़ा भारी उत्सर्ग किया है। उच्च शौर्य, भव्य त्याग, आत्म बलिदान, स्वातंत्र्य-प्रेम, शरणागत-रक्षा, स्वामि-भक्ति, दानशीलता, आन-बान और प्रतिज्ञा-पालन का जो ज्वलन्त आदर्श राजस्थानी साहित्य में कूट-कूट कर भरा है वह किसी भी सहृदय व्यक्ति का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर सकता है। इतना ही नहीं, किसी भी देश और किसी भी काल का सच्चा वीर उससे किसी न

किसी अंश में अवश्य स्फूर्ति ग्रहण कर सकता है। गायत्री-मंत्र में बुद्धि को सत्पथ की ओर प्रेरित करने के लिए भगवान् सविता से प्रार्थना की गई है। सूर्यदेव को संबोधित कर निम्नलिखित दोहे में चारण ने जो इच्छा प्रकट की है उसमें भी मन्त्र की सी पवित्रता और शक्ति भरी है:—

भल्ला ऊग्या भाण, भाण तुहारा भामणां।
मरण जियण लग माण, राखो कश्यप राव उत॥

अर्थात् हे सूर्य! तुम भले उदित हुए, मैं तुम पर न्यौछावर होता हूँ। हे कश्यप-कुमार! मेरी इतनी ही प्रार्थना है कि मृत्यु पर्यन्त मेरी इज्जत-आबरू, मेरी मान-मर्यादा की रक्षा करना।

आत्म-सम्मान की रक्षा के लिए जो बलिदान राजस्थान ने किये हैं उनके स्मरण मात्र से आज रोमांच और हर्षोद्रेक हो आता है। यह विश्वास होने लगता है कि जिस देश को इस प्रकार की महामहिमशाली संस्कृति का बल प्राप्त हो, उसे निराश होने की आवश्यकता नहीं है।

प्रस्तुत पुस्तक में इस प्रकार के करीब सौ प्रवाद[1] इकट्ठे किये गये हैं, जिनसे राजस्थान के सांस्कृतिक जीवन पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। इन प्रवादों के ऐतिहासिक तथ्यातथ्य के सिद्धान्त को किसी ने इस प्रकार अंग्रेजी में रूपान्तरित किया है:—

---

१ किंवदन्ती, जनश्रुति अथवा लोकोक्ति के अर्थ में प्रचलित इस छोटे से सार्थक शब्द को मैंने बंगला से ग्रहण किया है।—लेखक

Without fiction there will be a want of flavour,
But too much fiction is the house of sorrow.
Fiction should be used in that degree
That salt is used to flavour flour
As a large belly shows comfort to exist,
As rivers show that brooks exist,
As rain shows that heat has existed,
So songs show that events have happened +

बिना कल्पना के अथवा बिना नमक-मिर्च मिलाये मजा नहीं आता किन्तु अत्यधिक कल्पना का प्रयोग भी दुःख का कारण बन जाता है। जिस प्रकार स्वाद की वृद्धि के लिए आटे में नमक डाला जाता है, उसी प्रकार रसास्वाद के लिए उतनी ही मात्रा में कल्पना का प्रयोग किया जाना चाहिए। बढ़ी हुई तोंद से जैसे यह अनुमान लगा लिया जाता है कि तोंदधारी को आराम मिलता है, नदियों से जिस प्रकार नालों की सत्ता प्रकट हो जाती है, वर्षा से ही जैसे प्रकट हो जाता है कि गर्मी पड़ चुकी है, उसी प्रकार गीतों से इस बात का आभास मिलता है कि उनमें वर्णित घटनाएँ घटित हो चुकी हैं।

यह तो नहीं कहा जा सकता कि इन पवाड़ों में राजस्थान का वैज्ञानिक इतिहास सन्निहित है किन्तु इस प्रकार के गीतों और दोहों की उपयोगिता को राजस्थान के सुप्रसिद्ध इतिहासकार

+ रासमाला (Forbes) पृ० २६६

श्री ओझाजी ने भी स्वीकार किया है जैसा कि निम्नलिखित उद्धरण से स्पष्ट है—

"राजपूत राजाओं, सरदारों आदि के वीर कार्यों, युद्धों में लड़ने या मारे जाने, किसी बड़े दान के देने या उनके उत्तम गुणों, अथवा राणियों तथा ठकुराणियों के सती होने आदि के संबन्ध में डिंगल भाषा में लिखे हुए हजारों गीत मिलते हैं। ये गीत चारणों, भाटों, मोतीसरों और भोजकों के बनाये हुए हैं। इन गीतों में से अधिकतर की रचना वास्तविक घटना के आधार पर की गई है, परन्तु इनके वर्णनों में अतिशयोक्ति भी पाई जाती है। युद्धों में मरने वाले जिन वीरों का इतिहास में संक्षिप्त विवरण मिलता है, उनकी वीरता का ये अच्छा परिचय कराते हैं। गीत भी इतिहास में सहायक अवश्य होते हैं। राजाओं, सरदारों, राज्याधिकारियों, चारणों, भाटों, मोतीसरों आदि के यहाँ इन गीतों के बड़े बड़े संग्रह मिलते हैं। कहीं कहीं तो एक स्थान ही में दो हजार तक गीत देखे गये। इनमें से अधिकतर वीररसपूर्ण होने के कारण राजपूताने में ये बड़े उत्साह के साथ पढ़े और सुने जाते थे। इन गीतों में से कुछ, अधिक प्राचीन भी हैं, परन्तु कई एक के बनानेवालों के समय निश्चित न होने से उनमें से अधिकांश के रचना-काल का ठीक-ठीक निश्चय नहीं हो सकता। गीतों की तरह डिंगल भाषा के पुराने दोहे, छप्पय आदि बहुत

मिलते हैं। वे भी बहुधा वीररसपूर्ण हैं और इतिहास के लिए गीतों के समान ही उपयोगी हैं।" *

इस पुस्तक में छप्पय और गीतों के रूप में प्रचलित कुछ जनश्रुतियों का उल्लेख अवश्य हुआ है किन्तु अधिकांश प्रवाद दोहात्मक हैं। इसका मुख्य कारण है कि दोहा आसानी से याद हो जाता है तथा राजस्थानी बातों व ख्यातों में भी बीच बीच में अनेक दोहे मिलते हैं।

एक बात का स्पष्टीकरण आवश्यक है। पुस्तक का शीर्षक 'राजस्थान के ऐतिहासिक प्रवाद' रखा गया है किन्तु कुछ ऐसे भी प्रवाद इसमें आगये हैं जिनका सीधा संबन्ध राजस्थान से न होकर गुजरात अथवा सिन्ध आदि भारत के इतर प्रान्तों से है। प्रवादात्मक पद्यों के डिंगल भाषा में निर्मित होने तथा राजस्थान में अत्यधिक प्रचलित होने के कारण ये प्रवाद भी सहज ही इस पुस्तक में स्थान पा गये हैं। यह भी संभव हो सकता है कि किसी किसी प्रवाद में ऐतिहासिक तथ्य उतना न हो अथवा कोई प्रवाद ऐतिहासिक घटना के प्रतिकूल ही पड़ता हो किन्तु सांस्कृतिक दृष्टि से ये प्रवाद महत्वपूर्ण हैं और लिपिबद्ध करने के योग्य हैं—सम्भवतः इस विषय में दो मत न होंगे। प्रवादों के संग्रह करते समय मैं ऐसे लोगों के भी सम्पर्क में आया हूँ जिन्होंने कभी 'कागद स्याही को छुआ तक नहीं और कलम हाथ में पकड़ी

---

* राजपूताने का इतिहास (पहली जिल्द पृ० २६)

नहीं' किन्तु फिर भी जो धड़ल्ले से दोहों पर दोहे सुनाते जाते थे और सुनी-सुनाई बातों के आधार पर ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन करते चले जाते थे। इन कहावती ऐतिहासिक दोहों के कारण भी इतिहास की घटनाओं का स्मरण रख लेना बड़ा आसान हो जाता है। दोहों द्वारा अशिक्षित जनता भी इस प्रकार इतिहास का ज्ञान प्राप्त कर लेती है। राजस्थान की यह ऐतिहासिक दोहा-पद्धति भी निराली ही है।

इन प्रवादों का विषयानुसार वैज्ञानिक वर्गीकरण हो सकता था किन्तु वैज्ञानिकता की ओर मेरा लक्ष्य न होने से ऐसा न हो सका; राजस्थान के समुज्ज्वल आदर्शों से परिचित कराना भर ही मेरा ध्येय रहा है। इस प्रसंग में एक बात का उल्लेख कर देना आवश्यक जान पड़ता है। एक प्रसिद्ध दोहे में कहा गया है—

पुत्रो जाये कवण गुण, अवगुण कवण मुयेण।
जे बप्पी की भूंहड़ी, चांपीजै अवरेण॥

अर्थात् यदि बाप-दादों की भूमि पर दूसरों का अधिकार हो गया तो पुत्र उत्पन्न होने से क्या लाभ हुआ? और यदि वह मर ही गया तो क्या हानि हुई? इस प्रकार की उक्तियों में स्वातन्त्र्य-रक्षा में ही पुत्र-जन्म की सार्थकता मानी गई है किन्तु दूसरों की भूमि को अकारण हड़पना, आततायी बन कर निर्बल को पीड़ा पहुँचाना राजस्थानी संस्कृति का कभी आदर्श

नहीं रहा। राजस्थान के क्षत्रियों की शरणागत-रक्षा का आदर्श तो इतने गजब का था कि शरण में आने पर वे मुसलमानों की प्राण-पण से रक्षा किया करते थे। अलाउद्दीन के विरुद्ध हमीर ने जिसे शरण दी थी वह मुसलमान ही था जिसकी रक्षा में राणा ने अपने प्राण ही दे दिये। मुझे आशा है कि इस पुस्तक में संग्रहीत प्रवादों से पाठकों के मन में भव्य भावनाओं का संचार होगा। यदि प्रवादों के इस प्रथम शतक का स्वागत हुआ तो लेखक अनेक ऐसे शतक पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर सकेगा क्योंकि राजस्थान में इस तरह के असंख्य प्रवाद लोगों की जबान पर हैं जिनका प्रकाशन अनेक दृष्टियों से वांछनीय है। इस प्रांत का सांस्कृतिक इतिहास तो इन्हीं प्रवादों में सुरक्षित है।

प्रवाद-संबन्धी इस संग्रह-कार्य में मुझे प्रो० श्रीपतरामजी गौड़ 'विशद' एम० ए० साहित्यरत्न तथा ठा० सा० श्री ईश्वरदानजी आशिया से बड़ी सहायता मिली है जिसके लिए लेखक उक्त दोनों सुहृद्वरों का बड़ा आभारी है। बंगाल हिन्दी मण्डल की पिलानी-शाखा के संग्रहालय से भी मैंने कुछ प्रवाद लिए हैं जिसके लिए मण्डल के अधिकारियों को धन्यवाद देना मैं अपना परम कर्त्तव्य समझता हूँ। सेणी-बीजाणंद के कुछ दोहे मुझे श्री डूँगरसिंहजी देवड़ा से मिले हैं जिन्होंने इस कार्य में बड़ा उत्साह दिखलाया है। मेरे सुयोग्य अनुज प्रो०

श्री नागरमल सहल एम० ए० से मुझे पिछले कुछ वर्षों से निरन्तर ही साहित्यिक कार्यों के लिए प्रेरणा मिलती रही है। इस पुस्तक के प्रूफ-संशोधन का कार्य भी उन्होंने ही किया है किन्तु उन पर मेरा हक है जिसके कारण धन्यवाद की अपेक्षा नहीं रह जाती।

बंगाल हिन्दी मण्डल द्वारा पुरस्कृत मेरी 'राजस्थानी कहावतें' तथा प्रस्तुत पुस्तक के नाम मात्र से ही स्वर्गस्थ पितृदेव का रह रह कर स्मरण हो आता है। स्वयं घूम घूम कर मेरे लिए वे लोकोक्तियाँ और प्रवाद इकट्ठे किया करते थे और बहुधा पूछते रहते—तुम्हारी पुस्तक में अमुक लोकोक्ति का समावेश हुआ या नहीं ? उनके जीते जी उक्त दोनों पुस्तकें प्रकाशित हो जातीं तो वे बड़े प्रसन्न होते किन्तु विधि का विधान कुछ और ही था। करीब दस दिन की बीमारी के बाद ही वे अकस्मात् उस लोक को चल बसे जहाँ से लौट कर कोई नहीं आता। मृत्यु की घड़ियाँ गिनते हुए भी अपनी बीमारी की कभी चर्चा उन्होंने दूसरों से नहीं की, हमेशा दूसरों के दुख-दर्द की ही फिक्र वे करते रहे। हाथ पैर हिलाने डुलाने तक की शक्ति न होते हुए भी एक दिन मुझसे कहने लगे—तुम्हारे खेलने-कूदने के दिन हैं, अस्पताल के इस बन्द कमरे में तुम क्यों बैठे हो ? मेरी ओर से निश्चिन्त होकर अपने कार्य में लग जाओ। बीमारी के पहले काम करने के लिए घरवालों ने जब उनको मना किया तो बोले—क्या तुम लोगों की यह इच्छा है कि अभी से बीमार की

तरह खाट पकड़ लूँ ? उनके जीते जी कभी ऐसा मौक़ा नहीं आया जब घर पर गाय न रही हो और गाय की ऐसी सेवा करने वाला व्यक्ति मैंने अपने जीवन में दूसरा नहीं देखा; बीमारी की हालत में भी वे गाय को न भूले । साहस की वे मूर्ति थे; कर्मशीलता ही उनके जीवन का ध्येय था । उनकी पावन-स्मृति में प्रवादों संबन्धी यह पुस्तक लिखने की मैं सोच ही रहा था कि कलकत्ते मे श्रीयुत सीतारामजी सेकसरिया का पत्र मुझे मिला जिसमें लिखा था "रामकुमारजी से मेरा बहुत पुराना संबन्ध था, इसलिए उनकी कई स्मृतियाँ याद आती हैं ।" श्री सेकसरियाजी ने यह भी इच्छा प्रकट की कि मैं अपने पितृदेव संबन्धी कुछ संस्मरण लिखूँ । संस्मरण तो मैं नहीं लिख पाया किन्तु सेकसरियाजी के पत्र से प्रवादों संबन्धी यह पुस्तक लिखने की इच्छा और भी बलवती हो गई । पितृदेव के जीवन-काल में ही 'वीणा' तथा 'विशाल भारत' आदि अनेक पत्रों में प्रवादों संबन्धी मेरी लेखमाला छपने लगी थी । एक दिन अस्पताल में उनकी चारपाई के निकट बैठा हुआ मैं प्रवादों पर 'वीणा' के लिए एक लेख लिख रहा था तो वे बोले—तुम्हारी यह लिखने की आदत बड़ी अच्छी है । आखिर बताओ तो सही—तुम यह क्या लिख रहे हो ? 'राजस्थान के विसहर'

संबन्धी लेख मैंने पूरा करके जब उनको सुनाया तो वे बड़े प्रसन्न हुए थे । पूज्य पितः ! इन प्रवादों को पुस्तकाकार प्रकाशित होते देख क्या आपकी स्वर्गस्थ आत्मा को कुछ तृप्ति न मिलेगी ?

तुम दयालु थे दे गये पर-हित जीवन-दान
जीवन था नित प्रिय तुम्हें, भरा मान-सम्मान।

पिलानी मार्च १६४७ [कन्हैयालाल सहल



राजस्थान के ऐतिहासिक प्रवाद

(१)

राजस्थान में ऐसे बहुत-से राजा हुए हैं, जो स्वयं कविता करते और राज्याश्रित अनेक चारणों को बहुत-सा दान देकर काव्य-रचना के लिए प्रोत्साहित करते थे। बीकानेर के महाराज रायसिंहजी ऐसे ही राजाओं में से थे। दानी तो ये इतने बड़े थे कि जिसके कारण किसी-किसीने इनको राजस्थान के कर्ण की उपाधि से विभूषित किया है। सं० १६२ से ये अकबर बादशाह के पास रहने लगे थे। युद्धार्थ अकबरने जब उनको दक्षिणकी ओर भेज दिया, तो वहां संयोगसे एक फोग का पौधा महाराजको दृष्टिगोचर हुआ। पौधेको देखते ही आप तुरन्त घोड़े से उतर पड़े और उस पौधेसे बड़े प्रेम और भावावेश के साथ गले लगकर मिले। महाराज का देश-प्रेम निम्नलिखित दोहे के रूप में फूट पड़ाः—

तूं सै देसी रूँखड़ा म्हे परदेसी लोग ;
म्हांने अकबर तेड़िया[1] तू को[2] आयो फोग ॥

हे पौधे, तू देशी है, हम तो परदेशी लोग हैं। हमें तो इधर अकबरने बुला भेजा; किन्तु हे फोग, तू यहाँ क्योंकर आ पहुँचा ? एक जम्मू-निवासीके सम्बन्धमें भी कहा जाता है कि जब वह

१-बुला भेजा। २-क्योंकर, कैसे ?

नौकरीकी तलाशमें परदेश निकला, तो वहाँ जम्मूके एक पौधेको देखकर उससे लिपट गया और आँखोंमें आँसू भरकर कहने लगा—'मांडे गराइएँ दिए बूटिए! में नूं तो किम्मत खींचि ले आई तैनूं ऐत्थे कौण खिंचि ले आया?' अर्थात् हे मेरे गांवके बूटिए (पौधे), मुझे तो यहाँ क़िस्मत खींच लाई, तुझे यहां कौन खींच लाया? वह स्नेह-दशा भी सचमुच धन्य है, जिसमें पेड़-पौधे भी अपने आत्मीय-से जान पड़ते हैं।

(२)

ऊपर जिन महाराज रायसिंहजी का वर्णन किया गया है, उन्हींके छोटे भाई महाराज पृथ्वीराज सुप्रसिद्ध 'पीथल' कवि थे, जिनकी 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' डिंगल का सर्वोत्तम काव्य समझा जाता है। इनकी रानी चाँपादेको भी कवि-हृदय मिला था। कहते हैं कि एक बार महाराज पृथ्वीराज अपनी दाढ़ी सँवार रहे थे। दाढ़ी में उनको एक सफ़ेद बाल दिखाई पड़ा, तो उसे उखाड़कर फेंक दिया। पीछेसे रानी चाँपादेने महाराजको ऐसा करते देख लिया। महाराज मुस्कराकर कवितामें ही अपनी प्रियासे कहने लगे:—

पीथल धोला आविया, वहुली लागी खोड़।
पूरे जोवन पदमणी, ऊभी मुक्ख मरोड़॥
पीथल पलीट भुक्कियां, वहुली लागी खोड़।
मरवण मत्त गयन्द ज्यूँ ऊभी मुक्ख मरोड़॥

—पीथल कहता है कि सफ़ेद बाल उग आए, यह तो बड़ी खोड़ (खोट, खराबी, त्रुटि) लग गई। बड़ा बुरा हुआ कि पूर्ण यौवन को प्राप्त पद्मिनी-सी मोहिनी प्रिया खड़ी हुई मेरी ओर देखकर मुख मरोड़ रही है। पीथल कहता है कि दाढ़ी के बाल पकने लगे, बड़ा बुरा हुआ, जिसके कारण मदोन्मत्त हाथीके समान प्रिया (मरवण) खड़ी-खड़ी मुख मरोड़ रही है। यह सुनकर चाँपादे महाराजका भाव ताड़ गई और उनकी आत्म-ग्लानिके भावको दूर करती हुई अपने पतिके सन्तोषार्थ कहने लगी:—

प्यारी कहे पीथल सुणो, धौलां दिस मत जोय।
नरां नाहरां डिगमरां, पाक्यां ही रस होय॥

—प्यारी कहती है कि हे पीथल! सुनो, सफ़ेद बालोंकी ओर न देखो। मर्दों, सिंहों और दिगम्बरों (योगियों) में रस-परिपाक अवस्था पकनेपर ही होता है।

(२)

महाराणा प्रतापके पुत्र महाराणा अमरसिंहके लिए मुग़लों से युद्ध करते-करते जब ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई कि या तो उनको देश छोड़ना पड़ता या उनको क़ैद होना पड़ता, तो उन्होंने अपने मित्र अब्दुर्रहीम (मिर्ज़ाखाँ) खानखानाके पास-जो हिन्दी, फ़ारसी, अरबी, संस्कृत आदिके विद्वान होनेके साथ-साथ अच्छे कवि भी थे—निम्नलिखित दोहे लिखकर भेजे:—

गोड़ कछाहा राठवड़, गोखाँ जोख करन्त ।
कहजो खानाखानने, वनचर हुआ फिरन्त ॥
तँवराँ सूँ दिल्ली गई, राठोड़ां कनवज्ज ।
अमर पयँ पै खानने, वो दिन दीसै अज्ज ॥

—गौड़, कछवाहा और राठौड़ महलोंके झरोखोंमें मौज उड़ा रहे हैं । खानखानासे कहना कि हम जंगलोंमें भटक रहे हैं । तँवर राजपूतोंसे दिल्ली गई; राठोड़ोंसे कन्नौज गया । अमरसिंह के लिए भी वह दिन आज दिखाई दे रहा है । इस सन्देशके उत्तरमें खानखाना ने नीचे लिखा हुआ दोहा लिख भेजाः—

धर रहसी रहसी धरम, खपजासी खुरसाण ।
अमर बिसम्भर ऊपरां, राखो नहचो राण ॥

—धरती और धर्म रह जायँगे, खुरासानवाले (मुग़ल) खप जायँगे । हे राणा अमरसिंह, तुम विश्वम्भर (भगवान) पर भरोसा रखो । राज्य तो आते-जाते रहते हैं, धरती और धर्म ही हमेशा बने रहेंगे । खानखानाके उत्तर की ये मार्मिक पंक्तियाँ आज भी अवसर पड़नेपर राजस्थानमें कहावतकी भाँति प्रयुक्त होती हैं । इसे एक प्रकारका कहावती दोहा ही समझिए । इस उत्तरसे महाराणाका उत्साह बढ़ गया और वे निरन्तर लड़ाइयाँ लड़ते रहे ।

(४)

जयपुरके 'पद्माकर' हिन्दीके सुप्रसिद्ध कवियोंमें गिने जाते हैं । 'जगद्विनोद' नामक ग्रन्थमें उन्होंने जयपुरके जगतसिंहजी का

वर्णन किया है। कहा जाता है कि एक बार जोधपुरके राजा मानसिंह और जयपुरके महाराज जगतसिंहकी उपस्थितिमें पद्माकर और बाँकीदास चारणको अपने-अपने काव्य कौशल का परिचय देनेके लिए कहा गया। बाँकीदासने जोधपुर-नरेशकी प्रशस्तिमें नीचे लिखा दोहा कहाः—

ब्रज देसाँ चन्दन रूड़ाँ, मेरु पहाड़ाँ मौड़।
गरुड़ खगाँ लंका गढ़ाँ, राजकुलाँ राठौड़॥

—देशों में ब्रज, दरख्तोंमें चन्दन, पहाड़ोंमें सुमेरु, पक्षियोंमें गरुड़, गढ़ों(क़िलों)में लंका और राजकुलोंमें राठौर शिरोमणि हैं।

इसपर पद्माकरने निम्नलिखित दोहा सुनायाः—

ब्रज बसावन गिरि नख धरण, चन्दन वास सुभास।
लंका लेवन गरुड़ चढ़न, रजधारी रघुनाथ॥

—रघुनाथने ब्रजको बसाया। उन्होंने एक पर्वत (गोवर्धन) को अपनी अँगुलीपर धारण किया, चन्दनका लेप किया, लंकापर विजय प्राप्त की और गरुड़पर सवारी की। विष्णुके अवतार समझे जानेके कारण राम, कृष्ण और विष्णुमें भी किसी प्रकार का अन्तर नहीं समझा जाता।

इन दोनों दोहोंमें 'पद्माकर' के दोहेकी ही श्रेष्टता स्वीकार की गई। बाँकीदासने तो संसारकी उत्कृष्ट वस्तुओंका उल्लेख करते हुए राठौड़-राजवंशको सर्वश्रेष्ठ ठहराया; किन्तु पद्माकरकी युक्ति

तो यह थी कि कछवाहोंके पूर्वज रघुनाथने ही इन वस्तुओंक
रचना की है, स्थापना की है अथवा इनपर अधिकार जमाया है
पद्माकरको इस दोहेके बदले अपरिमित द्रव्य प्रदान किया गया

(५)

कविराजा श्री करणीदानने 'सूरज-प्रकाश' नामक प्रसि
ग्रन्थकी रचना की, जिसका कुछ अंश बंगालकी रायल एशिय
टिक सोसायटी द्वारा प्रकाशित भी हो चुका है। एक बार ज
पुर-महाराज जयसिंहजी और जोधपुर महाराज अभयसिंह
पुष्कर तीर्थ करनेके लिए गए हुए थे। कहते हैं, जब करणीदा
वहाँ पहुँचे, तो दोनों महाराजा सम्मान-प्रदर्शनके लिए खड़े
गए और बड़ी आवभगतके साथ मिले। जोधपुरके महारा
अभयसिंहजीने कहा-'देखिए बारहठजी, आज इस तीर्थ-स्ना
पर हम दोनों राजा आपसे ऐसी कविता सुनना चाहते हैं,
अक्षरशः सत्य हो और साथ ही इस बातका भी ध्यान रहे
एक ही छन्दमें हम दोनों राजाओंका नाम आ जाय।' बारहठ
ने कहा कि यदि आपकी यही इच्छा है, तो सुनिए:—

पत जैपुर जोधाण पत दोनों (ही) थाप उथाप।
कूरम मारयौ डीकरो, कमधज मारयौ बाप॥

— जयपुर-नरेश और जोधपुर नरेश दोनों ही मर्यादाका उल्
न करनेवाले निरंकुश शासक हैं। कछवाहा-वंशोत्पन्न जयपु
राजाने तो अपने पुत्र शिवसिंहजीको मारा है और राठौड़

वंशके राजाने अपने पिता अजीतसिंहजीको मारा है। यह सुन कर जयपुर-महाराज तो मुँहमें रूमाल डालकर हँसने लगे; किन्तु अभयसिंहजीने कहा—'बारहठजी, पधारिए, मैं आपका मुँह भी नहीं देखना चाहता।'

करणीदानने भी उपेक्षासे जवाब दिया—'मुझमें गुण हुआ, तो मेरा मुँह देखना ही पड़ेगा।'

आगे चलकर करणीदानने जब 'सूरज-प्रकाश' की रचना की, तो जो इस काव्यको सुनता, वही फड़क उठता। कनातके पीछेसे अभयसिंहजीने भी इसे सुना; किन्तु जिस स्थानपर सरबलन्दखान और अभयसिंहजीकी लड़ाईका वर्णन आया, महाराज मारे ओजके उछल पड़े और कनात के पर्देको उठा कर करणीदानको गले लगा लिया। कविराजाको लाखपसाव, आलास ग्राम और ताजीम प्रदान की। इन्हें पहुँचाने गए, तो स्वयं घोड़ेपर सवार हुए और कविराजाको हाथीपर चढ़ाया—

अस चढ़ियो राजा अभो, कवि चाढ़े गजराज।
पोहर एक जलेबमें मोहर हले महराज॥

कविराजाकी निर्भीकताको सराहें या महाराज अभयसिंहजी की गुणग्राहकताको?

(६)

स्वामिभक्ति राजस्थान की प्रमुख विशेषता रही है। कहा जाता है कि एक बार युद्ध में जब महाराज पृथ्वीराज मूर्च्छित

हुए तो गिद्धों ने आकर उनके नेत्रों का नाश करना चाहा। यह देख कर वीर शिरोमणि संयमराय ने जो स्वयं घायल होकर युद्ध क्षेत्र में पड़े थे अपना मांस काट काट कर गिद्धों की ओर फेंक जिससे गिद्ध महाराज पृथ्वीराज के नेत्रों से हट कर फेंके जाते हुए मांस की ओर लपक पड़े। इस प्रकार महाराज पृथ्वीराज के नेत्रों की रक्षा वीरवर संयमराय ने अपने प्राणों की आहुति देकर की। इस प्रसंग में निम्नलिखित दोहा अत्यंत प्रसिद्ध है—

गीधन कों पल भख दिये, नृप के नैन बचाय।
सँदेही वैकुण्ठ में, गये जु संयमराय॥

(७)

राजस्थान का कौन ऐसा व्यक्ति है जिसने वीरवर पाबूजी राठौड़ का नाम न सुना हो? पाबूजी मारवाड़ के 'कोलू' नामक ग्राम के रहने वाले थे। माँ देवल चारणी के पास कालमी नामक एक प्रसिद्ध घोड़ी थी जिसके गुणों से आकर्षित होकर यह राठौड़ वीर उनके पास घोड़ी की याचना करने के लिए पहुँच गया। देवलजी ने कहा कि यह घोड़ी तो उसी को दी जा सकती है जो मेरी गायें घिरने पर उनकी रक्षा के लिए अपने प्राण देने के लिए तैयार हो। यह सुनते ही पाबूजी ने जो भीष्म प्रतिज्ञा की उसको कवि के मार्मिक शब्दों में सुनिये—

पानी पवन प्रमाण, धर अंबर हिन्दू धरम।
अब मोय धांधल आण, सिर देस्यां गायां सटे॥

अर्थात् पानी, पवन, पृथ्वी, आकाश और हिन्दू धर्म को साक्षीस्वरूप सामने रख कर मैं अपने पिता धांधल की शपथ खाकर कहता हूँ कि जिस दिन तुम्हारी गायें घिरेंगी, उस दिन उनके बदले में अपना यह मस्तक दे दूँगा। और अक्षरशः सच्ची कर दिखाई उस वीर ने अपनी इस भीष्म प्रतिज्ञा को।

ऊमरकोट में पाणिग्रहण के अवसर पर जब पाबूजी भाँवर फिर रहे थे, उनको संकेत मिला कि देवलजी की गायें घेर ली गई हैं। खबर मिलते ही राजकन्या का हाथ और चँवरी छोड़कर पाबूजी कालमी घोड़ी पर सवार होकर युद्धार्थ निकल पड़े—

"नेह निज रीझ री वात चित ना धरी, प्रेम गवरी तणो नाहिं पायो।
राजकँवरी जिका चढि चँवरी रही, आप भँवरी तणी पीठ आयो॥"

इस अवसर पर पाबूजी की सालियाँ और उनकी पत्नी ने जो मर्मभरी विनय की उसका दर्द तो आज भी पुराना नहीं पड़ा है—

जेज हूंत कर जीण, तसवीरां लिखल्यां तुरत।
बल न इसड़ो बींद ऊमरकोट न आवसी॥

अर्थात् हे वीर! जरा देर से घोड़ी पर जीन कसो जिससे आपकी तसवीर उतारलें। हमारे इस ऊमरकोट में ऐसा वर फिर कभी नहीं आयेगा।

खीचियों और पावूजी में घमासान युद्ध हुआ। पावूजी सारी गायें छीन कर चारणों को देदीं। आप भी बड़ी वीरत पूर्वक लड़ते हुए इस युद्ध में काम आये।

प्रतिज्ञापालन का ऐसा दिव्य और भव्य आदर्श और क मिलेगा ?

(८)

मनुष्य के जीवन में बहुत सी ऐसी बातें हैं जो विवादास्प जिनके विषय में निश्चयात्मक रूप से कुछ नहीं कहा जा सक किन्तु जो पैदा हुआ है उसकी मृत्यु निश्चित है, इसमें किसी संदेह नहीं। निश्चयात्मकता के उपमान के लिए तो मृत्यु जै अन्य कोई उपमान लाख माथापच्ची करने पर भी नहीं मिले और वह मृत्यु कब आजाय इसका कोई ठिकाना भी नहं 'प्रबन्ध चिन्तामणि' में एक अपभ्रंश का दोहा मिलता है—

ऊग्या ताविउ जहि न किउ, लखउ भणाई निघट्ट।
गणिया लब्भई दीहड़ा, के दहक अहवा अट्ठ॥

अर्थात् कुशल लाखा का कथन है कि शत्रु का उदय होते यदि उसे नष्ट न किया जाय तो फिर न जाने भविष्य में क्या ह गिने गिनाये आठ दस दिन ही तो जीने के लिए मिलते हैं। संभ वतः प्रबन्ध चिंतामणि के उक्त पद्य के आधार पर ही राजस्था भाषा में लाखा फूलाणी आदि का मार्मिक प्रवाद प्रचलि हुआ हो।

मरदो माया माणलो लाखो कहै सुपट्ठ ।
घणा दिहाड़ा जावसी के सत्ता के अट्ठ ॥

अर्थात् हे मनुष्यो ! अधिक से अधिक सात या आठ दिन के ये ही तो यह माया मिली है—क्यों नहीं इसका उपभोग कर ते? यह लाखा की स्पष्ट उक्ति है। इस पर लाखा की पत्नी हती है—

फूलाणी फेरो घणो, सत्ता सूं अठ दूर ।
रोते देख्या मुलकता, वे नहिं उगते सूर ॥

फूलाणी कहती है कि स्वामिन् ! सात और आठ में तो बहुत न्तर है। जिन्हें हमने रात्रि में हँसते हुए देखा था, वे प्रातः ाल होते ही उस लोक को चल देते हैं जहाँ से लौट कर कोई ीं आता। फूलाणी की पुत्री ने इसका प्रतिवाद करते ए कहा—

लाखो भूल्यो लखपती; मा भी भूली जोय ।
आंखां तणे फरूकड़े, क्या जाणू क्या होय?

अर्थात् माता-पिता दोनों ने ही अच्छी तरह विचार कर बात ाहीं कही। सच तो यह है कि आँखों के फड़कने में जितना समय ागता है उसमें ही न जाने क्या का क्या हो जाय ?

दासी ने तो जो यह सब सुन रही थी और भी सूक्ष्म दृष्टि का परिचय देते हुए कहा—

लाखो अन्धो धी अँधी, अँध लाखारी जोय।
सांस वटाऊ पावणो, आवे न आवण होय॥

लाखा, उसकी स्त्री, उसकी लड़की सब इस प्रकार बातें करते जैसे उन्होंने दुनिया को देखा ही न हो। आँखों के फड़कने में भ तो कुछ समय लगता है। साँस के जाने में समय कैसा ? अरे यह श्वास तो बटाऊ (पथिक) के समान है, एक बार आक फिर आये न आये, इसका कौन भरोसा ? श्वास और उच्छ्वास के जो बीच का समय है उसमें ही न जाने कितनी बड़ी घटन घटित हो जाय, जीव महाप्रयाण के लिए निकल पड़े।

(६)

राजस्थान के इन वीरों ने जीवन की क्षणभंगुरता के इस रहस्य को भलीभाँति हृदयंगम किया था। तभी तो प्राणों क हथेली पर रख कर वे आततायी का दमन करने के लिए युद्धक्षे में प्राणों का व्यापार किया करते यहाँ तो मृत्यु को भ त्यौहार के रूप में माना जाता था। किसी अच्छे निमित्त क लेकर अगर प्राण त्याग किये जायें तो उससे बढ़कर दुनिया म और क्या होगा ?

आततायियों का दमन करने के लिए राजपूत योद्धा के पास जब भी कोई सहायता के लिये पहुँचता तो वह बिना किसी हिचकिचाहट के अपने प्राणों का बलिदान करके भी उसकी

सहायना करता। क्षत्रिय शब्द की व्युत्पत्ति करते हुये कालिदास ने सच ही कहा है 'क्षतात् किल त्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढः' जीते जी जिसके सामने आर्त की वाणी सुनाई पड़ती रहे वह कैसा क्षत्रिय !

इतिहास में प्रसिद्ध है कि लल्ला नामक पठान ने सोलंकियों से 'टोडा' छीन लिया था। महाराणा श्री रायमल्लजी के ज्येष्ठ पुत्र श्री पृथ्वीराजजी अत्यन्त यशस्वी और प्रतापी हुये। ये इस समाचार से कुपित होकर अकस्मात् टोडे जा पहुँचे थे और टोडा विजय करके इन्होंने सोलंकियों को दे दिया था। इस आकस्मिकता के कारण लोग इस बात का अनुमान भी न लगा सके कि क्योंकर महाराज इतना शीघ्र टोडा पहुँच सके। कहते हैं उसी दिन से यह 'उडणा पृथ्वीराज' के नाम से प्रसिद्ध हो गये। उनकी वीरता का तो इतना आतंक छा गया कि निम्नलिखित पद्य ही कहावत के रूप में प्रचलित हो गया—

भाग लल्ला ! प्रथीराज आयो।
सिंह कै साँथरै स्याल ब्यायो॥

अर्थात् हे लल्ला ! पृथ्वीराज आगया, अब यदि अपनी खैर चाहता है तो भग चल। सिंह की गुफा में गीदड़ ने बच्चा दिया है, कैसे निर्वाह होगा ?

(१०)

वाल्मीकि रामायण में कहा गया है कि जब सीता ने दुष्ट भावना वाले रावण को अपनी पवित्रता के तेज से दूर हटा दिया

तो राक्षसियों ने आकर उन्हें घेर लिया और कहा—तुम बड़ी भोली हो, अभी दुनियाँ के व्यवहारों को नहीं जानती हो। नहीं तो जो कुछ तुम्हें दिया जा रहा है उसको तुम यों ठुकरा न देतीं। इस पर भगवती सीता ने उत्तर दिया--बहनो, तुम्हारा यह नगर सुन्दर है, यहाँ के ये भवन भव्य हैं और यहाँ सभ्यता के (संस्कृति के नहीं) सभी लक्षण मौजूद हैं। लेकिन क्या यहाँ दो या तीन व्यक्ति भी नहीं हैं जो पाप को पाप समझ कर रावण से सच्ची बात कह सकें?"

राजस्थान का चारण भी सच्ची बात कहने से कभी नहीं चूकता था। प्रवाद है कि अपने पिता के घातक जोधाणनाथ बखतसिंहजी अपने अश्व को 'बाप बाप' कह कर थाबड़ रहे थे। एक चारण ने यह सुन कर ताना मारा—

बापो मत कह बखतसी, कांपत है केकाण।
एक बार बापो कहे, पवंग तजैलो प्राण॥

अर्थात् हे बखतसिंह ! अश्व को 'बापो बापो' मत कहो, यह सुन कर घोड़ा काँप रहा है। एक बार बाप कह दोगे तो घोड़ा प्राण त्याग देगा क्योंकि तुम 'बापमार' जो ठहरे !

देश और धर्म की रक्षा के लिए प्राण त्याग करना राजस्थान के वीरों का परम पुनीत आदर्श रहा है। चारपाई पर प्राण देने की अपेक्षा युद्ध में धराशायी होना यहाँ सदा श्रेष्ठ समझा गया। राजस्थानी वीर मृत्यु से कभी नहीं डरे, मृत्यु से वे हमेशा खिल-

धाड़ करते रहे। उनके भयंकर शौर्य को देख कर तो स्वयं मृत्यु भी भयभीत हो गई होगी। पाणिग्रहण के अवसर पर भी जब कोई राजपूत योद्धा शत्रु के आक्रमण की खबर सुन लेता तो वह तुरन्त ग्रन्थि-बन्धन को तोड़ कर युद्ध के लिए प्रस्तुत हो जाता था। प्रणय और कर्त्तव्य में यहाँ कभी अंतर्द्वन्द्व उपस्थित हुआ ही नहीं। वीर पत्नी अपने आपको कभी विधवा समझती ही नहीं थी क्योंकि उसका विश्वास था—

सती च योषित् प्रकृतिश्च निश्चला पुमांसमभ्येति भवान्तरेष्वपि।

अर्थात् सती स्त्री और निश्चल प्रकृति (स्वभाव) मनुष्य का जन्मजन्मांतरों तक साथ नहीं छोड़ती।

कहाँ हैं आज ऐसे स्वामिभक्त जो अपना मांस काट काट कर अपने स्वामी की रक्षा करें? कहाँ हैं आज वे जबान के धनी राजपूत जो एक बार 'हाँ' कह देने पर प्राण देकर भी अपने वचन पर डटे रहें? कहाँ हैं वे राजस्थान के उदार नरेश जो 'लाख-पसाव' और 'करोड़ पसाव' दे देकर चारणों और कवियों का सम्मान किया करते थे? कहाँ हैं वे स्वतन्त्रता-प्रेमी प्रजावत्सल नरेश जो पीड़ित जनता का आर्तनाद सुन कर अपने प्राणों की आहुति दे दिया करते थे? राजस्थान की संस्कृति क्या आज एक अतीत की वस्तु रह गई? क्या राजस्थान का सांस्कृतिक प्रवाह बहते बहते विलीन हो गया? यह राजस्थान जो कभी सिंह की तरह गर्जन करता था क्यों आज इतना गिर गया?

(१३)

राजस्थान के इन ऐतिहासिक प्रवादों में ऐसी शक्ति है जिससे जीवन के उच्च आदर्शों के लिए कोई भी स्फूर्ति ग्रहण कर सकता है। इतिहास द्वारा घटनाओं का ज्ञान होता है, किन्तु इस प्रकार की उक्तियों में ही सच्चा सांस्कृतिक वातावरण अंतर्हित रहता है। किसी महान् लक्ष्य के लिए निर्भयतापूर्वक प्राण त्याग कर देना तो राजस्थानी संस्कृति की विशेषता रही है। केवल भारत वर्ष के लिए ही नहीं, यह समुज्ज्वल आदर्श तो समस्त विश्व के लिए अनुकरणीय हो सकता है। आज तो देश को ऐसे साहित्य की आवश्यकता है जो स्वातंत्र्य-यज्ञ में आहुति देने के लिए हममें स्फूर्ति भर सके। यदि हम आत्म-हनन करके समस्त विश्व की संपत्ति भी प्राप्त कर सकें तो वह किस काम की? इसके विपरीत कर्त्तव्य पालन करते हुए यदि हम अपने प्राणों की आहुति दें तो ऐसा मरण वस्तुतः मरण नहीं, यह तो अमर जीवन है। यह है राजस्थान की स्फूर्तिदायिनी भावना जो समस्त देश को विरासत के रूप में मिली है और जिस पर हम आज भी गर्व कर सकते हैं।

(११)

सांगा नाम का एक गौड़ राजपूत था। 'हरिरस' के रचयिता श्री ईश्वरदास जी (जिनके लिए राजस्थान में 'ईसरा सो परमेसरा' लोकोक्ति के रूप में प्रचलित है) एक वार उसके गाँव में होकर निकले। सांगा यद्यपि निर्धन था किन्तु फिर भी उसने ईश्वरदास जी को उनकी जमात सहित वड़ी श्रद्धा और भक्तिपूर्वक निम

न्त्रित किया। उसने सोचा--ऐसा सौभाग्य मुझे अपने जीवन में फिर कब मिलेगा! आतिथ्य-सत्कार के बाद सांगा ने ईश्वरदासजी की सेवा में निवेदन किया कि मुझे खेद है कि आप जैसे भगवद्भक्त के अनुरूप कोई भेंट मैं आपको अर्पित न कर सका किन्तु मेरा विनम्र निवेदन है कि लौटते समय आप इधर ही होकर आवें। बड़े परिश्रम से मैं एक ऊनी कम्बल तैयार कर रहा हूँ, आपके लौटने तक वह अवश्य तैयार हो जायगा। इसे आपको अर्पित कर मुझे जो प्रसन्नता होगी उसका शब्दों द्वारा वर्णन नहीं किया जा सकता। सच्चे हृदय से निकली हुई इस प्रार्थना को श्री ईश्वरदास जी ने स्वीकार कर लिया और वे अपने गन्तव्य स्थल के लिये रवाना हो गये। श्री ईश्वरदास जिन दिनों अमरेली में थे, दैवदुर्विपाक से सांगा अकाल ही में काल कवलित हो गया। बात यह हुई कि सांगा पशुओं को लेकर जंगल में गया हुआ था और वेणू नामक नदी में होता हुआ गाँव को लौट रहा था किन्तु अचानक ही नदी में बाढ़ आजाने से वह पशुओं सहित नदी में बहने लगा। बहते बहते नदी के तट पर स्थित अपने साथियों से उसने कहा — मैं तो अब उस लोक को चला जहाँ से लौट कर कोई नहीं आता किन्तु मेरी माँ को यह सँदेशा पहुँचा देना कि भक्तशिरोमणि श्री ईश्वरदासजी को जो कम्बल भेंट स्वरूप देने की मैंने प्रतिज्ञा की थी वह कम्बल उन्हें अवश्य अर्पित कर दें। कितने मर्म भरे शब्दों में राजस्थान के कवि ने सांगा के सन्देश को पद्यबद्ध किया है—

नदी वहंतो जाय, साद ज सांगरिए दियो ।
कहजो म्हारी माय, कवि ने दीजै कामली ॥

[अर्थात् नदी में बहते हुए सांगा ने अपने साथियों को पुकार कर कहा—मेरी माँ से कहना कि वह कवि, श्री ईश्वरदास जी को कम्बल देना न भूल जाय !] मृत्यु के समय भी जो अपनी बात को न भूला, ऐसे सांगा को उसकी मृत्यु के बाद हम कैसे भूल जायँ ? राजस्थान के कवियों ने सांगा को अपने काव्य द्वारा अमरत्व प्रदान किया है। सांगा के औदार्य के सम्बन्ध में कहे हुए निम्नलिखित कवित्त को भी हम सहज ही नहीं भूल सकते—

छल से ठिगाय गयो दानव विचारो बलि
तीन पैंड नाप लियो हरि त्रिभुवन को
सुयोधन कोश पै अपेल जिहि आज्ञा रही
केशव बखानै कैसे कौरव करन को ?
राम महाराज की बदान्यता में राजनीति
भेद लहिबे तैं लंक दीन्हीं विभीषण को
कामली न भूल्यो मझधार में बहत जात
कहेंगे उदार सांगा गौड़ से सुजन को ॥ *

---

* यह कवित्त लेखक को श्री शीशदानजी चारण की कृपा से प्राप्त हुआ था।

(१७)

जोधपुर के राव मालदेव का विवाह जैसलमेर की अनिंद्य सुन्दरी रानी उमादे के साथ हुआ था। उमादे के साथ दहेज में आई हुई एक भारमली नाम की लावण्यमयी दासी थी। उसके साथ राव मालदेव का अनुचित सम्बन्ध हो गया जिससे उमादे अपने पति से हमेशा के लिए रूठ गई। इसीलिए वह इतिहास में रूठी रानी के नाम से प्रसिद्ध है। राव मालदेव ने उमादे के कोप से बचने के लिए भारमली को बाघा कोटड़िया के साथ कोटड़े भिजवा दी। कोटड़ा जोधपुर राज्य में एक गाँव है, जहाँ की जागीर का मालिक होने से बाघा 'कोटड़िया' कहलाता था। कुछ वर्षों बाद राव मालदेव ने आशाजी बारहठ को कोटड़े से भारमली को वापिस लिवा लाने के लिए भेजा। बारहठ जी जब कोटड़े पहुँचे तो युगल प्रेमियों ने उनका इस प्रकार स्वागत सत्कार किया जिसे देख कर बारहठ जी दङ्ग रह गये। भारमली और बाघा जी के प्रणय-पूर्ण जीवन को देख कर तो बारहठ जी ने दृढ़ निश्चय कर लिया कि प्रेमियों की इस जोड़ी में मैं कभी भी विछोह न पड़ने दूंगा। बारहठजी आये थे भारमली को लिवा लाने के लिए किन्तु स्वागत-सत्कार से वशीभूत होकर स्वयं भी वहीं रहने लग गये। एक दिन सबको शोक-निमज्जित कर बाघाजी इस संसार से सदा के लिये कूच कर गये! आशाजी बाघाजी की मृत्यु से व्यथित होकर चित्त-विक्षिप्त की तरह 'बाघा बाघा' की रट लगाने लगे। आशाजी

पल खोली रुखि देव तहां बालक नहिं दीसै ।
मारयो कोइ मंझार सींह सीयाल क सस्सै ॥
धरे रखी हर ध्यान डाभ पूतलो बनायो ।
बचारे जजर वेद डाभ रख नाम देरायो ॥
ओथ वहे आवियां बाल जभ दीस बीजो ।
बात कुण तेडवे मात कह सगनी तेरो ॥२॥

ऋषि-देव की पलकें खुलीं तो वहां बालक नहीं दिखलाई पड़ा । उन्होंने सोचा—किसी मार्जार, सिंह, शृगाल अथवा खरगोश ने बालक को मार डाला है ! उन्होंने ध्यान धर कर डाभ का पुतला बनाया और यजुर्वेद को विचार कर उस पुतले का डाभ नाम रख दिया । सीता जब लौट कर आई तो उसे दूसरा बालक जैसा दिखलाई पड़ा ।

एक अन्य छप्पय में यह भी कहा गया है—

"समसर पंदर चोरासीए महा जोध पेदास हुओ"

अर्थात् उस युग के संवत् १५८४ में इस महायोद्धा डाभ का जन्म हुआ (जिससे राजपूतों का डाभी कुल चला ।) राजपूतों के ३६ कुलों में डाभी कुल की भी गणना की जाती है । ध्यान देने की बात है कि किस प्रकार संवत तक देकर इस प्रवाद को ऐतिहासिक तथ्य का रूप दिया गया है । यह सब विद्वानों की गवेषणा का विषय है ।

उमादे जैसलमेर के रावल लूणकरणजी की पुत्री थी। ज्यों ज्यों वह बड़ी हुई, उसके सौन्दर्य की प्रशंसा राजस्थान में सर्वत्र फैल गई। जोधपुर के राव मालदेव उमादे से विवाह करना चाहते थे किन्तु कहते हैं कि उनके मूंछ न होने से विवाह में बड़ी अड़चन पड़ रही थी। उन्होंने शंकर की उपासना की जिससे प्रसन्न होकर आशुतोष भगवान ने स्वप्न में राजा को दर्शन दिये। शिव ने वरदान माँगने के लिए कहा तो राव मालदेव बोले कि मेरे बड़ी बड़ी मूंछें आजायँ जिससे राजपूत जाति में मैं मुँह दिखलाने योग्य हो जाऊँ और सगर्व अपना सिर ऊँचा कर सकूँ। महादेव के 'तथास्तु' कहते ही राजा के बड़ी बड़ी मूंछें आगईं जिससे इतिहास में वे 'मूंछों वाले मालदेव' के नाम से विख्यात हुए। अब जैसलमेर के भाटी राजा को अपनी लड़की का विवाह राव मालदेव से करने में कोई आपत्ति न थी। बड़ी धूमधाम से विवाह हुआ। विवाह के बाद मालदेव रंग-महल में वधू की प्रतीक्षा करने लगे। जब देर होने लगी तो पति की ओर से सँदेशा भेजा गया। पत्नी ने उत्तर में कहलवाया कि अभी मैं अपने संबन्धियों से मिल रही हूँ, इसलिए कुछ समय लग जायगा। दूसरी बार संदेशा मिलने पर उमादे ने उत्तर दिया कि आवश्यक साज-सज्जा के बाद मैं अभी आ रही हूँ। तीसरी बार सँदेशा मिलने पर उमादे ने अपनी दासी के हाथ कहला

भेजा कि एक मिनट के वाद मैं महल में पहुँच रही हूँ । उमादे जब महल में पहुँची तो दासी के साथ राजा को आलिंगन करते देख कर आगवबूला हो उठी । जो थाल आरती के लिए उसने सजाया था उसे औंधा कर फेंक दिया और राव मालदेव से हमेशा के लिए रूठ गई जिससे वह राजस्थान के इतिहास में रूठी रानी के नाम से प्रसिद्ध हुई । "वि० सं० १५९६ में एक वार रावजी की आज्ञा से चारठ ईश्वरदास के अत्यधिक अनुनय-विनय करने पर उमादे का मान कुछ नरम हो गया था । परन्तु उसी अवसर पर रावजी को बीकानेर की चढ़ाई का प्रबन्ध करने के लिए जोधपुर आना पड़ा । अतः वह वात वहीं रुक गई । इसके वाद वि० सं० १५९९ में जब रावजी को अपने विरुद्ध शेरशाह की चढ़ाई की सूचना मिली, तब उन्होंने ईश्वरदास को लिखा कि तुम उमादे को हिफ़ाजत के साथ अजमेर से जोधपुर ले आओ और वहाँ के किले में शीघ्र ही युद्ध-सामग्री एकत्रित की जाने का प्रबन्ध करवा दो । यह समाचार सुन उमादे ने ईश्वर-दास से कहा कि शत्रु का आगमन जान लेने के बाद मेरा क़िला छोड़ कर चला जाना सरासर अनुचित होगा । इससे मेरे दोनों कुलों अर्थात् नैहर और ससुराल पर कलंक लगेगा । अतः आप रावजी को लिखदें कि वह यहाँ का सब प्रवन्ध मुझी पर छोड़ दें । वह यह भी विश्वास रखें कि शत्रु का आक्रमण होने पर मैं राना साँगा की रानी हाडी कर्मवती के समान अग्नि में प्रवेश न कर शत्रु को मार भगाऊँगी और यदि इसमें सफल न हुई तो

वीर क्षत्रियाणी की तरह सम्मुख रण में प्रवृत्त होकर प्राणत्याग करूँगी। जब रावजी को पत्र द्वारा इस बात की सूचना मिली तब उन्होंने ईश्वरदास को लिखा कि तुम हमारी तरफ़ से रानी को कहदो कि अजमेर में तो हम स्वयं शेरशाह से लड़ेंगे। इस-लिए वहाँ का प्रबन्ध तो हमारे ही हाथ में रहना उचित होगा; हाँ, जोधपुर के किले का प्रबन्ध हम तुम्हें सौंपते हैं। अतः तुम शीघ्र ही यहाँ चली आओ। रानी ने भी अपने पति की इस आज्ञा को मान लिया और अजमेर का क़िला रावजी के सेना-पतियों को सौंप वह जोधपुर की तरफ रवाना हो गई। परन्तु जैसे ही यह समाचार रावजी की अन्य रानियों को मिला, वैसे ही वे सौतिया डाह से घबरा गईं। अतः उन्होंने उसके जोधपुर आगमन में बाधा डालने के लिए बारठ आसा को रवाना किया। यह आसा बारठ ईश्वरदास का चचा था '। रानियों ने इसे बहुत कुछ लालच देकर इस कार्य के लिये तैयार किया था।

इसके बाद जिस समय उमादे की सवारी जोधपुर से १५ कोस पूर्व के कोसाना गाँव में पहुँची, उस समय आसा भी उसकी पीनस के पास जा पहुँचा। संयोगवश ईश्वरदास उस समय कहीं इधर उधर गया हुआ था। इससे मौक़ा पाकर आसा ने यह दोहा ज़ोर से पढ़ा—

"मान रखे तो पीव तज, पीव रखे तज मान।
दोय गयंद न बंध ही, एकण खंभे ठाँण॥"

यह सुन रानी ने कोसाने में ही डेरा डालने की आज्ञा देदी और आगे जाने से साफ़ इन्कार कर दिया। उसने रावजी को कहलवा दिया कि मुझे यहीं से जोधपुर के क़िले की रक्षा का प्रबन्ध करने दिया जाय। कहते हैं कि खवासखाँ जब कोसाने की तरफ़ चला तो रानी उमादे के सरदारों की जमघट को देख कर उसकी युद्ध करने की हिम्मत न हुई। वि० सं० १६०४ में रानी गूंदोज चली गई और वहाँ से केलवा जाकर रहने लगी। वि० सं० १६१६ में जब इसे मालदेवजी के स्वर्गवास की सूचना मिली, तब इसने वहीं पर सती होकर पति का अनुगमन किया। * आसाजी बारहठ ने (जिसके एक दोहे के कारण उमादे आजन्म पति से रूठी रही) रानी के सती होने पर निम्न-लिखित १४ छप्पय बनाये:—

गिरां सिरे गोरहर, चन्दजास नामौ चाड़ण।
मेदपाट चीतोड़, भलो जोधाण भवाड़ण।
नव सहसौ छत्रपड़े, वड़म सागर लीलाबर।
आई कालाखरी, मुवो राजंद मँडोवर।
सांभले बात ऊमा सती, जादव आँगमियो जलण।
मोलियो गहे राव माल रो, बाँध कण्ठ ऊठी बलण ॥१॥

अर्थात् पहाड़ों में गोरहर सबसे श्रेष्ठ है जो यश को अमर करने वाला है तथा मेवाड़, चित्तौड़ और जोधपुर को खूब भ्रम

* मारवाड़ का इतिहास (पं० विश्वेश्वरनाथ रेउ) पृ० १२०-१२१

में डालने वाला है । काल-पत्री आई कि नौ हज़ार गाँवों का छत्र, बड़प्पन का समुद्र, अच्छी लीलाओं वाला मंडोर का राजेन्द्र चल बसा । इस बात को सुन कर यादवजाति की सती उमादे ने जलना अंगीकार किया और राव मालदेव का चीरा लेकर गले से बाँध लिया और जलने के लिए उठी ॥१॥

रोपवि काठ सुगन्ध–अंगर चन्दण मलियागर ।
परमल धूप कपूर, घिरत सींचे वैसन्नर ।
मिले कोड़ तेंतोस, सूर उच्चिस्रव साहे ।
करन बात अखियात, माल राजा पड़ गाहे ।
सिस बिंब जेम ऊमां सती, कमल वसे सोलह कला ।
गंगेव राव रावल करन, आज करे विहुँ ऊजला ॥२॥

अर्थात् सुगन्धित काष्ट, अगर, मलयागिरि चन्दन को रोप कर, धूप कपूर की सुगन्ध के साथ आग में घी सींचा । ३३ करोड़ देवताओं से मिल कर सूर्य ने उच्चैःश्रवा नामक (?) अपने घोड़े को राजा मालदेव के मरने की बात विख्यात करने के लिए रोका । चंद्रबिंब जैसी उमा सती जिसके मस्तक में १६ कला बसती हैं गंगा के बेटे (मालदेव) और रावल करण (अपने पिता) दोनों को आज उज्ज्वल करती है ॥२॥

मन्दोदर मेलियो राण, हेकलो रावण ।
कुन्ती पांडु नरिंद रही, बोलाय विचक्षण ।
कान्ह मरण गोपियां, करण धम्मो नह दीधो ।
कौसल्या दसरत्थ, काठ चढ़ साथ न कीधो ।

पांतरी इती सह वड़ परव, सनमुख झालां कुण सहे ।
पांतरूं केम मोटो परव, कथन एम ऊमा कहे ॥३॥

अर्थात मन्दोदरी ने रावण राजा को अकेला भेजा, विचक्षणा कुन्ती ने भी पाण्डु राजा को डुबो दिया, मरते हुए कृष्ण को गोपियों ने हाथ का सहारा नहीं दिया, चिता पर चढ़ कर कौशल्या ने दशरथ का साथ नहीं दिया । ये सब स्त्रियाँ इतने बड़े पर्व को चूक गईं—सम्मुख अग्नि की ज्वालाओं को कौन सहे ? उमा कहती है कि ऐसे बड़े पर्व को मैं कैसे हाथ से जाने दूँ ? ॥३॥

जेण लाज हम्मीर, मुवो जूझे रिणथम्भर ।
जेण लाज पातल्ल, मुवो पावागढ़ ऊपर ।
जेण लाज चुँडराज, मुवो नागोर तणे सिर ।
कान्हड़ दे जालोर, अने दूदो जेसल गिर ।
वड़घरां लाज राखण वड़ी, करन सधू खत्रवट करे ।
सो लाज काज ऊमां सती, मालराव कारण मरे ॥४॥

अर्थात जिस लाज के रखने के लिए हमीर चौहान लड़ कर रणथम्भोर पर काम आया, जिस लाज की रक्षा के लिए महाराणा प्रताप ने पावागढ़ पर प्राण दे दिये, जिस लाज के लिए चूंडा राठोड़ नागोर पर मर मिटा, कान्हड़दे चौहान जालोर पर और दूदा भाटी जैसलमेर पर काम आया, उसी लाज की रक्षार्थ वड़े घरों की वड़ी लाज रखने के लिए लूणकरणजी

की लड़की उमादे क्षत्रियत्व दिखलाती है, उमा सती राव मालदेव के साथ प्राण-त्याग करती है ॥४॥

मरणो भय वीकम्म, खत्री तज वायस खद्धो ।
मरणे भय रावणह, जीवरव किरणां वद्धो ।
मरणे भय जल पेस, माण दुर्जोधन मुक्के ।
मरणे भय पण्डवां, कोट हतणापुर चुक्के ।
विकराल झाल हुय वय वसण, वले माल वैकुँठ वरण ।
सामरे काज ऊमा सती, मेड़ेची रचियो मरण ॥४॥

अर्थात् मरने के डर से वीकम ने क्षत्रिय-धर्म का त्याग कर कौवा खाया था, मरने के डर से रावण ने अपने प्राणों को सूर्य की किरणों से बाँधा था, मरने के डर से दुर्योधन ने मान छोड़ दिया था, मरने के डर से पांडव हस्तिनापुर का गढ़ छोड़ गये थे परन्तु विकराल ज्वाला में प्रवेश करके वैकुण्ठ में मालदेव को फिर वरने के लिए जैसलमेर की उमा सती ने स्वामी के लिए मृत्यु को अंगीकार किया ॥४॥

गुरड़ चढ़ो गोविन्द, सांड़ चढ़ आवो संकर ।
इन्द्र चढ़ौ इण वार, पीठ ऐरावत सद्धर ।
हंस चढ़ौ सुर जरठ, चढ़ौ देवी सिंघाणै ।
चढ़ो सूर सपतास, चढ़ो अपछरा विमाणै ।
सांपड़े सूर मुख सामही, घुव जेही सांचै घड़ै ।
सुर इता आज आवो सतो, चढ़ आंजस काठां चढ़ै ॥६॥

अर्थात् हे गोविन्द ! गरुड़ पर चढ़ो, हे शंकर ! बैल पर चढ़ कर आओ, हे इन्द्र ! इस समय प्रबल ऐरावत की पीठ पर चढ़ो, हे वृद्ध देव (ब्रह्मा) हंस पर चढ़ो, हे देवी ! सिंह की सवारी करो, हे सूर्य ! अपने सप्ताश्व रथ पर चढ़ो, हे अप्सरा ! विमान पर चढ़ो—आज इतने देवता आओ क्योंकि स्नान करके सूर्य के सम्मुख ध्रुव के समान सच्ची आन बान वाली उमा सती चिता पर चढ़ती है ॥६॥

सभ सौलै सिणगार, सतव्रत अँग अँग साहे ।
अरकबार मुख ऊग, नीर गंगाजल नाहे ।
चीर पहर अस चढ़ केस वेणी सिर खुल्लै ।
देती परदक्खणा, हंसगत राणी हल्लै ।
सुर भुवन पैस पहुंता सरग, साम तणौ मन रंजियौ ।
रूसणो मालदे राव सूँ, भटियाणी इम भंजियौ ॥७॥

अर्थात सोलह शृंगार करके सती के व्रत को अंग अंग में लिये हुए जिसके मुख से मानो बारह सूर्य उगे हैं ऐसी उमादे ने गंगाजल से स्नान किया। चीर पहन, घोड़े पर सवार हो, बाल और चोटी खुली रख प्रदक्षिणा दे, हंस की चाल से चल कर रानी स्वर्ग में पहुँची। स्वामी का मन प्रसन्न हुआ। इस प्रकार उमादे ने राव मालदेव से अपना रूठना दूर किया ॥७॥

हंस गमण राव रमण, निरम्मल सारँग नेणी ।
इम्रत वैण सब जाण, वदन चन्दा अह वेणी ।

पतव्रता पदमणी, सील सुन्दर सतवन्ती ।
लछण महा लच्छिमी, जिसी गंगा परवत्ती ।
घड़ सती माल चाढ़ल बड़म, जीव अंग करती जुवा ।
झेलती झाल आठूँ दिसा, हार कण्ठ जू जू हुआ ॥८॥

अर्थात हंस के समान चाल वाली, राव मालदेव में अनुरक्त, मृग के से निर्मल नेत्रवाली, मीठे वचन बोलने वाली, चन्द्र-वदनी, सर्प की सी वेणी वाली, पतिव्रता पद्मिनी, सुशीला, सुन्दर सत्यवती, लक्षणों में महालक्ष्मी, गंगा और पार्वती जैसी बड़ी सती उमादे ने मालदेव को बड़प्पन चढ़ाने के लिए जीव को अंग से अलग किया, आठों दिशा की ज्वाला झेलते हुए उसके हार और कण्ठ जुदा जुदा हो गये ॥८॥

सार सचील सिनान दान सोव्रन विप्रां दे ।
धारे चित निज धर्म, पखां ऊजला करे वे ।
मेट मोह मृतलोक, काठ भक्खण मझ पेसै ।
महाझाल मंगाल, मांहि सिद्धासण बैसै ।
करकाल दोप निकलँक करण, तवजे तिण वारां तणो ।
सुरभवन पधारे साम सूं, राणी भांगे रूसणो ॥९॥

अर्थात वस्त्र सहित स्नान करके, ब्राह्मणों को सोने का दान देकर निज धर्म का पालन किया. दोनों पक्ष (ससुराल और पीहर) उज्ज्वल करने के लिये संसार का मोह छोड़ कर अग्नि में घुसी और महाज्वाला प्रज्वलित करके उसमें सिद्धों का-सा

आसन लगा कर शरीर का दोष दूर किया। उस समय का वर्णन किया जाता है कि रानी ने स्वर्ग लोक में पधार कर अपने स्वामी से रूठना दूर किया ॥९॥

भंवर भ्रूह पर जाल, जाल जंघा रंभातर।
कनक पयोधर कुम्भ, राख कीया चढ़ि जमहर।
चंपकली निरमली, भखे झाला दावानल।
बांहा नाल मुणाल, कंठ होमे सानू जल।
बिधु वदन केस कोमल तकां, दहवे जेम सहस्सफण।
बालिया सती ऊमां विनैं, अधर बिंब दाड़म दसण ॥१०॥

अर्थात् भंवों के भंवरे जला कर जांघों के रंभातरु (केले) जलाये, स्वर्ण कुँभ रूपी स्तनों को जला कर खाक कर दिया। निर्मल योनि का भी दावानल की ज्वाला ने भक्षण कर डाला। कमल-नाल जैसी भुजाओं और कैलास-शिखर जैसे उज्ज्वल कंठों को अग्नि के हवाले कर दिया। चंद्रमा-से मुख और वासुकि नाग जैसे कोमल केश जला दिये। उमा सती ने बिंबा फल जैसे होंठ और अनार जैसे दाँतों को जला कर भस्म कर दिया।

होम हंसगत चाल, होम सारंगह लोचण।
सुन्दर होम सरीर, होम सोव्रन्न महाव्रन।
कंठ होम कोयल्ल, गात होमे चल गैंवर।
ग्रह होम त्रिहुं भंवर, चीर होमे पाटंवर।

बत्तीस लछ्छण गुण रूप बहु, त्यारां अंतर दाख तण ।
होमतां त्रिहु भेला हुवा, सील माण लज्जा सवण ॥ ११॥

अर्थात् हंस के समान चाल को होम कर मृग-समान अपने नेत्रों को आग में होम दिया; सुन्दर शरीर होम डाला, सुन्दर महावर्ण होम दिया । कोयल का सा कंठ होम दिया, हाथी की सी चाल वाला शरीर होम दिया । भौंरे जैसी दोनों भवें होम दीं, रेशम के चीर भी अग्नि के हवाले कर दिये । ३२ लक्षण, गुण तथा अपार रूप को होमते समय शील, मान और सघन लज्जा—ये तीनों भी इकट्ठे हो गये थे ॥११॥

नमे वंदि नह कियो, नमे छन्दो नह कीधो ।
नमे न लियो सुहाग, नमे आदर नह लीधो ।
नमे न कीधो नेह, नमे संतोष न पायो ।
नमे न लागी पाय, माण एकोज्ञ उपायो ।
लाय न सकियो मालदे, जुग सह जीतो पुरुप जिण ।
सद सधर माण ऊमां तणो, रहियो जेम फणेन्द्रमिण ॥१२॥

अर्थात् झुक कर नमस्कार नहीं किया, झुक कर अधीनता स्वीकार नहीं की; झुक कर सुहाग नहीं लिया और न झुक कर आदर लिया । झुक कर प्रेम नहीं किया और न झुक कर संतोष पाया । झुक कर पाँवों से न लगी । उसने जो मान किया था उसको जगद्विजयी मालदेव भी नहीं छुड़ा सका । तब ऊमा का सबल मान वासुकि नाग की मणि की तरह ऊँचा रहा ॥१२॥

माण नेह भंजणो, माण छंदो जड़ तोड़ण ।
माण करण बैराग, माण वर नार विछोड़ण ।
माण वेध घर गमण, माण सज्जन होय दुज्जन ।
माण पेम अपहरण, माण अवधूतां लच्छन ।
सो ग्रहे माण ऊमा सती, तैं सत राखे माण तण ।
मेले न माण राव माल सूँ, जली मान जलंत जलण ॥१३॥

अर्थात् मान नेह को तोड़ने वाला है, मान अधीनता की जड़ उखाड़ने वाला है, मान वैराग्य करने वाला है, मान वरवधू को छुड़ाने वाला है, मान घर जाने में बाधा डालने वाला है, मान से सज्जन दुर्जन हो जाते हैं, मान प्रेम का हरण करने वाला है, मान अवधूतों का लक्षण है । वही मान हे उमा सती ! तूने धारण किया और उसका सत रखा । राव मालदेव से भी उस मान को न छोड़ा और जलते जलते भी अपने मान को लेकर जल गई ॥१३॥

पेस मज्झ पायक्क, हुई जमहर नख चख जल ।
क्रम चौरासी तणा, करे तण्डल भूमण्डल ।
होमदहण विच होत, देह बाली दावानल ।
धुके होम घड़हड़ण—वात मुख सहँस वलोवल ।
सामहा जौड़ ऊमा सती, देव भाण दिस हाथ दुव ।
मालराव तणो सांभल मरण, होग अँगारा राख हुव ॥१४॥

अर्थात् अग्नि में प्रवेश करके नख से शिखा तक जल कर राख हो गई, चौरासी योनियों के कर्मों को भूमण्डल में ही टुकड़े टुकड़े करके आग में होमते हुए देह को दावानल में जला दिया। अग्नि से धड़धड़ाकर धुआँ उठा। हजारों मुखों से यह बात चारों तरफ फैल गई कि उमा सती सूर्य देवता के सामने दोनों हाथ जोड़ कर राव मालदेव का मरना सुन कर अंगारे होकर राख हो गई ॥१४॥

उमादे के संबन्ध में श्रीकृष्णजी बारहठ के बनाये हुए निम्नलिखित तीन छप्पय भी प्रसिद्ध हैं—

वप बांकम वीटियो, तेज झलहल सूरातन ।
मन धारण व्रत मुनी, महा अहँकार सहज मन ।
भृकुटी चढ़ व्रहार, अटल त्रिसळोन उतारे ।
आग झाल चख अरुण, निमख नह कोप निवारे ।
उबारे बोलइल पर अमर, पत राखे सत जत पणो ।
कीनो कोई ऊम.कली—राणी जाई रूसणो ॥१॥

अर्थात शरीर बाँकपन से घिरा हुआ है, शौर्य का तेज झलक रहा है, मन में मौन धारण किये हुए है, मन और स्वभाव में बड़ा अहंकार है, भृकुटी भौंवों पर चढ़ी है, ललाट के अटल तीन सल उतरे हुए नहीं हैं, अग्नि की ज्वाला के समान आँखें लाल हो रही हैं, क्षण भर भी कोप को दूर नहीं किया है, अपने बोल अमर करके पृथ्वी पर पूरे किये हैं और जितेन्द्रियत्व की पत रखी है। ऐसी उमा की तरह कोई रानी जाई रूटना ॥१॥

धरा माडे धिन धिन्न, वंस धिन सोम वखाणी ।
जात धिनों जादम्म, सहर धिन धिन जैसाणो ।
धिन पित मात धिनो, जिकां घर देवी जनमिय ।
गढ़ धिन धिन गोरहर, राय आँगण उण रम्मिय ।
धिन धिन ऊमादे धीवड़ी, वड़पण सींग वधाड़िया ।
सासरो पीहर मा माण सहु, तीन पखांनू तारिया ॥२॥

माड की धरती धन्य है, धन्य कहना चाहिए चंद्रवंश को, यादव जाति को धन्य है, जैसलमेर शहर धन्य है; धन्य है वह माता, धन्य है वह पिता जिनके घर देवी जन्मी। गोरहर का गढ़ धन्य है जिसके आँगन में वह खेली है। धन्य है ऐसी पुत्री उमादे को जिसने वड़प्पन का सींग बढ़ाया और ससुराल, पीहर और ननसाल तीनों घरानों को तारा ॥२॥

घुरिया ढोल त्रिघाय, गहरघण घोर नगारां ।
अमरवृन्द आणन्द, समर हर हरमुख सारां ।
अख्य पहुप वरसतां, वुही चढ़ वैस विमाणां ।
वगे वास वैकुण्ठ, कीत कथ हुई ठिकाणां ।
पटाम्बर आप छूटा पटां, सुगन्दरे रूप सगत्त रे ।
मुलकते वदन राव माल सूं, मिलिया महल मुगत्त रे ॥३॥

अर्थात् तीन डंकों से ढोल वजे, घनघोर नौवतें बजीं, देवताओं में आनंद हुआ। सब मुँह से हर हर करने लगे, फूलों की वर्षा होते हुए वह विमानों पर चढ़ कर चली, बैकुण्ठ में जाकर

बसने पर उसकी कीर्त्ति की कथा स्थान स्थान पर होने लगी। मस्त हाथी के समान, खुले केशों से शक्ति के रूप में हँसते हुए मुक्ति के महल में राव मालदेव से जाकर मिली ॥३॥

दोहा

ऊमां सतव्रत आगळे, भई सती भटियाण।
उभे दुरँग उजवालिया जोधाणे जैसाण ॥

अर्थात् उमादे ने सती होकर जोधपुर और जैसलमेर दोनों कुलों को उज्ज्वल किया। *

(८२)

फूलजी ने अपने पुत्र लाखा को किसी कारणवश वनवास दे दिया था। बाद में पिता अपने पुत्र को तलाश करता रहा। जब फूलजी ने नदी के सामने लाखा के दान की बड़ी प्रशंसा की और लाखा का पता पूछा तो नदी ने उत्तर दिया—

लाखै सिरखा लख गया, अनड़ सरीखा आठ।
हेम हिड़ाऊ सारखो, वळे न आयो वाट।
लालां करया बिछावणा, हीराँ बाँधी पाज।
कांटै मोती पो गयो, हेम गरीब निवाज ॥

अर्थात् लाखा जैसे तो लाखों चले गये, आम ऊनड़ जैसे आठ चले गये किन्तु हेम हिड़ाऊ जैसा कोई भी फिर इस मार्ग

---

* रूठी रानी (मुंशी देवीप्रसादजी) पृ० ५०-६०

से नहीं आया। गरीबनिवाज हेम ने तो लालों के बिस्तर बिछा दिये, हीरों से पाल बाँध दी और काँटे काँटे में मोती पिरो दिये। ऊपर के दोहों में लाखा, जाम ऊनड़ तथा हेम की दान-वीरता का उल्लेख हुआ है। दोहों के मर्म को समझने के लिए संक्षेप में उनकी अन्तर्गत कथाओं को जान लेना आवश्यक है। कहते हैं कि एक बार जरार नदी के तट पर ज्येष्ठ मास में लाखा फूलाणी की फौज पहुँची। अचानक वर्षा होने से अमीरों के शाल दुशाले, रेशमी वस्त्र आदि सब भीग गये। नदी के जो झाड़ थे उन पर सबने अपने अपने वस्त्र सुखा दिये। लाखा खड़ा खड़ा यह सुन्दर दृश्य देख रहा था। जब सब अपने अपने सूखे वस्त्र झाड़ों पर से उतारने लगे तो लाखा ने कहा कि झाड़ों पर वस्त्रों को ऐसे ही रहने दो, नदी बड़ी सुन्दर जान पड़ती है। मैं तुम सबको नये वस्त्र दिलवा दूँगा। इसीलिए निम्नलिखित पंक्ति कहावत के रूप में सुनी जाती है—

लाखै वन ओढाडियां, पीली पांतरियांह।

जाम ऊनड़

एक बार सिंध के स्वामी जाम ऊनड़ के मन में किसी सत्पात्र को बड़ा दान देने की इच्छा उत्पन्न हुई। उसने कविराज साँवल सुध को अपनी राजधानी में बुलाया और उसका बड़ा आदर-सत्कार किया। साँवल ने जाम के सामने जब लाखा फूलाणी के दान की बड़ी प्रशंसा की तो उसे अच्छा न लगा

और उसने कहा—मेरे दान की प्रशंसा क्यों नहीं करते ? साँवल
ने कहा कि आप लाखा जैसे दातार हैं कहाँ जो आपकी प्रशंसा
करूँ ? यदि आप इतने बड़े दातार हैं तो अपना सारा राज्य
किसी को क्यों नहीं दे देते ? कहते हैं, जाम ऊनड़ ने कविराज
को अपना राजसिंहासन सौंप दिया था ।

जरार नदी के किनारे भाद्रपद के महीने में भैंसें घास चर
रही थीं । चारणों के लड़के वंशी बजा रहे थे । ऐसे समय
जाम ऊनड़ इधर से आ निकला । मानव, प्रकृति और पशु
तीनों का सुन्दर सम्मेलन देख कर वह उल्लसित हो उठा और
उसने हुक्म दिया कि नदी के पास की यह जमीन आनन्दोल्लास के
लिए सुरक्षित रखी जाय । राज्य का इस पर कोई अधिकार
नहीं रहेगा ।

हेमहिड़ाऊ

इसी जरार नदी के समीप एक बार हेमहिड़ाऊ नामक बन-
जारे की ५०० बालद निकलीं । ३०० बैलों पर सच्चे मोती लदे
हुए थे । नदी पार करता हुआ एक बैल जब ठीक बीचों बीच
पहुँचा तो रस्सी खुल गई और नदी के जल में मोतियों का ढेर
मिल कर बहने लगा । वहाँ रंग बिरंगी मछलियाँ दौड़ कर
इकट्ठी हो गईं । बड़ा मोहक दृश्य था—नदी का निर्मल जल,
मुँह में सच्चे मोती लिये हुए रंग बिरंगी मछलियाँ और सूर्य की
ज्योतिर्मयी रश्मियाँ ! इस सुन्दर दृश्य से मुग्ध होकर हेमहिड़ाऊ

ने हुक्म दिया कि ३०० बैलों के सब मोती-नदी के निर्मल जल में डाल दिये जायँ। ऐसा सुहावना दृश्य फिर कब देखने को मिलेगा ?

इस प्रकार लाखा, जाम ऊनड़ तथा हमहिड़ाऊ की दान-शीलता का संक्षिप्त वर्णन ऊपर किया गया है। नदी के उत्तर को सुन कर फूलाजी वापिस चले गये। लाखा ने यह प्रण कर रखा था कि जो मुझे यह कहेगा कि फूलजी की मृत्यु हो गई उसकी पीठ में से कलेजा निकलवा लूँगा। कालान्तर में जब फूलजी की मृत्यु हो गई तो किसी को भी हिम्मत नहीं हो रही थी कि वह लाखा के सामने उसके पिता फूलजी की मृत्यु का समाचार सुना सके। एक जोगी ने इस काम का बीड़ा उठाया। उसने सारंगी की ध्वनि में कहा—

"फूलाणी बिन सिंधड़ी, सूनी दीसै आज।"

लाखा ने कहा—यह कौन बोल रहा है ? जोगी ने उत्तर दिया—सारंगी। किंवदन्ती है कि सारगी पहले पोली नहीं थी, उसी दिन से पोली हुई। लाखा ने अपनी प्रतिज्ञा का पालन कर दिखाया।

(८३)

सांगड़ा नामक किसी सोरठी राजा की माँ का स्वर्गवास हो गया था। सब सरदारों ने राज माता के शोक में अपनी मूँछें

मुँड़वाई किन्तु मुंजालदे नामक एक सरदार ने मुछ मुँड़वाने से साफ़ इन्कार कर दिया। किसी ने पूछा—मुंजालदे, क्या दो सिर हैं जो मूँछ नहीं मुँड़वाते ? मुंजालदे ने कहा—"कुछ भी हो जाय, मैं मूँछ नहीं मुँड़वा सकता क्योंकि सांगड़ा की माता जब कँवारी थी तब मेरे साथ उसकी मँगनी की बातचीत हुई थी !" राजा के पास जब यह खबर पहुँची तो उसने हुक्म दिया कि मुंजालदे को मूँछ मुँड़वानी ही होगी। किन्तु मुंजालदे भी अपनी हठ का पक्का ठहरा। उसने कहा—धड़ से सिर अलग हो जाय किन्तु यह बात नहीं हो सकती। सांगड़ा अपनी बड़ी सेना ले आया और मुंजालदे पर धावा बोल दिया। छोटे-से गाँव का स्वामी मुंजालदे अपना बचाव न कर सका। वीरता से युद्ध करते हुए उसने अपने प्राण त्याग दिये किन्तु फिर भी उसकी काया ऐसी जान पड़ती थी मानो जीवनी शक्ति वैसे ही बनी है; मूँछें तो भौंवां तक तनी हुई थीं। "तो भी सो धक कंवरी भौंवां मूँछ मिलाय।" (सतसई) मुंजालदे के शव पर खड़े होकर सांगड़ा ने तलवार खैंची और कहा—कहते न थे कि मूँछ नहीं मुँडाऊँगा ? यह कह कर उसने अपनी तलवार से मुंजालदे की मूँछ काटना शुरू किया। एक चारण पास ही खड़ा था। यह दृश्य उससे न देखा गया। उसने निम्नलिखित 'विसहर' कहा—

जीतो कोइ जुड़ियो नहीं, चाचर चौजी वार।
सांग समारणहार, मूंछ थारी मुंजालदे॥

अर्थात हे मुंजालदे ! तू हजाम की तलाश में था किन्तु तुम्हें कोई मिला न था; पर आज देख तो सही, यह सांग तुम्हारी मूँछें सँवार रहा है !

यह सुनते ही सांगड़ा ठहर गया । एक तरफ की मूँछ तो वह काट चुका था, दूसरी ओर की मूँछ और सांगड़े की तलवार ज्यों की त्यों रह गई !

नमस्कार है कवि की इस व्यंग्य-भरी वाणी को !

(८४)

राव कल्लाजी मारवाड़ के राव मालदेव के पौत्र थे । अकबर ने कल्लाजी को जीते जी पकड़ लाने के लिये सिवाणे सेना भेजी । राव मालदेव ने कल्लाजी के पिता रायमल को सिवाणे की जागीर दी थी । जब किला फतह न हो सका तो बादशाह ने दूसरी सेना और भेजी । कल्लाजी के नाना सिरोही के चौहान वंशीय राव सुरताण की इच्छा थी कि उनका दौहित्र किसी तरह अकबर के संघप में न आवे । इसलिए उन्होंने दूदाजी आसिया को कल्लाजी के पास समझाने के लिए भेजा । बारहठजी ने अपने वाक्चातुर्य से एक बार तो कल्लाजी को किला छोड़ कर चलने के लिए राजी कर लिया किन्तु दूदाजी मे यह कार्य अनिच्छा से किया था, इसलिए उनके मुख से गीत की यह पंक्ति निकल पड़ी–

---

* श्री झवेरचदजी मेघाणी के एक लेखांश से संकलित

खींपाँ तणा पुराणा खोलड़ हिये न उतरिया हरपाल ।

अर्थात जैसलमेर के भाटी राजपूत हरपाल पर जब जसल-
र की फौज चढ़ आई थी तब उसने अपना कच्चा फूस का घर
भी नहीं छोड़ा था ।

यह सुन कर कल्लाजी ने कहा कि बारहठजी, फिर आप ही
मुझ से यह कैसे आशा रखते हैं कि मैं सिवाणे के किले को छोड़
कर क्षत्रियत्व का उल्लङ्घन करूँगा ? कल्लाजी बड़ी वीरता से
ही सेना के विरुद्ध लड़ कर काम आये किंतु बादशाह उनको
ते जी पकड़ न सका ।

(८५)

जोधपुर के महाराज जसवन्तसिंहजी की मृत्यु के बाद
राठौड़ वीर दुर्गादास ने उनके पुत्र अजीतसिंह की रक्षा के लिए
जिस स्वामि-भक्ति और वीरता का असाधारण परिचय दिया उसे
इतिहास के पाठक भली भाँति जानते हैं । दुर्गादास के संबन्ध में
निम्नलिखित कहावती दोहा राजस्थान में अत्यन्त प्रसिद्ध है:—

माई एहड़ा पूत जण, जेहड़ा दुर्गादास ।
बाँध मुंडासा राखियो, बिण थंभे आकास ॥

अजीतसिंह जब तक नाबालिग थे, दुर्गादास ने ही मारवाड़
की रक्षा की थी । 'बिण थंभे आकास' द्वारा इसी की ओर
संकेत जान पड़ता है ।

(८६)

एक बार नवानगर के रावल जाम के दरबार में एक युवक कवि ने आकर इस ढंग से अपनी कविता पढ़ी कि श्रोतागण मुग्ध हो गये किन्तु राजपंडित श्री पीतांबर भट्ट ने अपना सिर हिला दिया जिससे जाम को यह संदेह हो गया कि कविता दोषपूर्ण है। फलतः कवि का उतना सत्कार न हुआ जितना होना चाहिए था। इसलिए कवि प्रतिशोध की भावना से प्रेरित होकर हाथ में तलवार ले पीतांबर का वध करने के लिए रात्रि में उनके घर पहुँचा और तुलसी थाँवले की ओट में छिप रहा। इस अवसर पर पीताम्बर अपनी स्त्री से कह रहे थे कि प्रिये! तुम्हें क्या बताऊँ, आज तो राज-दरबार में एक ऐसा कवि-रत्न आया जिसने अपनी कविता, विद्वत्ता एवं सुमधुर कण्ठ से समस्त राज-सभा को मंत्र-मुग्ध-सा कर दिया परन्तु मैंने यह सोच कर उस समय अपना सिर हिला दिया कि यदि यह कवि सामान्य मानव की प्रशंसा न करके कहीं भगवान के गुण-वर्णन में अपनी शक्ति का उपयोग करे तो उसका कल्याण हो जाय! यह सुनते ही अवसर की प्रतीक्षा में छिप कर बैठे हुए कवि का क्रोध एकदम शान्त हो गया और पीताम्बर भट्ट के चरणों में तलवार रख कर उसने अपना सिर झुकाया और क्षमा चाही। अपने हृदय का कुत्सित भाव भी उनके सामने प्रकट कर दिया और कहा—"गुरुदेव, मेरा उद्धार कीजिये।" इसी युवक कवि ने आगे चल कर अपने सुप्रसिद्ध स्तोत्र-ग्रन्थ 'हरिरस' की रचना

और अपने गुरु श्री पीताम्बर भट्ट का निम्नलिखित शब्दों
स्मरण किया:—

लागूं हूँ पहली लुले, पीताम्बर गुरु पाय ।
भेद महारस भागवत, प्रामूं जास पसाय ॥

अर्थात् जिसकी कृपा से मैंने भगवत संबन्धी महारस का प्राप्त किया, उस पीताम्बर गुरु के चरणों को मैं सबसे म झुक कर स्पर्श करता हूँ ।

(८७)

धारा नगरी के राजा पंवार उदयादित्य की दो रानियाँ थीं । रानी बाघेली से रिणधवल का जन्म हुआ और दूसरी रानी सोलंकी से जगदेव उत्पन्न हुआ । बाघेली जगदेव से बहुत द्वेष रखती थी, इसलिए उसे सिद्धराज जयसिंह के यहाँ नौकरी के लिए जाना पड़ा । जगदेव का बड़ा सम्मान हुआ और उसके अनुपम गुणों के कारण २०००) प्रति दिन उसे वेतन मिलने लगा । जगदेव ने अपने स्वामी की रक्षा के लिए कई बार प्राणों की बाजी लगा दी थी ।

एक बार कंकाली सिद्धराज जयसिंह के दरबार में आई और उसने जगदेव के दान की बड़ी प्रशंसा की । महाराज को यह सह्य न हुआ । उसने कंकाली से कहा—तुम जगदेव से दान ले आओ, मैं उससे चौगुना तुम्हें दूंगा । कंकाली ने कहा—इस

पृथ्वी पर पँवारों से दान में बाजी लगाने वाला कोई पैदा ही नहीं हुआ—

प्रिथमी बड़ा पँवार, प्रिथमी पँवारां तणी ।
एक उज्जैणी धार, बीजो आबू बैसणो ॥

अर्थात् पृथ्वी पर पँवार सबसे बड़े हैं और पृथ्वी पँवारों की ही है । एक ओर तो उज्जैन और धार में उनकी राजधानी है, दूसरी ओर आबू में ।

जगदेव ने कंकाली को अपना मस्तक काट कर दे दिया जिसके संबन्ध में निम्नलिखित पद्य प्रसिद्ध हैं—

जो न भाण ऊगमैं, जो नवि वासग धर झल्लै
राम बाण न ग्रहै, करण पारथ्थो जु मल्लै
ब्रह्मा छोडे वेद, पवन जा रहै पुलंतौ
चन्द सूर ना वहै, रहै किम अमी झरंतौ
पंमार नाकारो नां करै, मेर-समो जाको हियौ
कंकाळी कीरति करै, सीस दान जगदे दियौ ॥

अर्थात चाहे भानु न उदय हो, चाहे शेष नाग पृथ्वी को धारण करना छोड़ दे, चाहे रामचंद्र समुद्र का मान-मर्दन करने के लिए बाण न चढ़ावें, चाहे कर्ण अर्जुन को परास्त करदे, ब्रह्मा वेद को धारण करना छोड़ दें, पवन बहना छोड़ दे, चन्द्र और सूर्य अपनी दैनिक यात्रा को छोड़ दें और चन्द्र से अमृत झरना

बन्द हो जाय, परन्तु जिसका मेरु के समान-अचल हृदय है ऐसा पँवार वीर जगदेव याचक को नांही नहीं कर सकता। कंकाली कीर्ति-गान करती है कि जगदेव ने शीश-दान किया।

ग्यारह सौ इक्कांणवै, चैत तीज रवि वार।
सीस कंकाली भट्ट नैं, जगदे दियो उतार ॥ *

सिद्धराज जयसिंह से इस प्रकार का दान न दिया जा सका। जगदेव के सामने उसे अपनी हार स्वीकार करनी पड़ी। स्वामिभक्ति और दानशीलता के लिए जगदेव पँवार का नाम हमेशा लिया जायगा।

(८८)

राव अमरसिंहजी की मृत्यु के बाद उनकी स्त्री हाडी रानी ने सती होने की इच्छा प्रकट की। पति का शव आगरे के लाल किले में था जहाँ उसकी दुर्दशा हो रही थी। किसी की हिम्मत नहीं हो रही थी कि दुर्ग में प्रवेश कर शव को बाहर ले आवे। इस अवसर पर गोपालदासजी चाँपावत के पुत्र वीररत्न श्री बलूजी ने अपने अद्भुत साहस और वीरता का परिचय दिया। अपने थोड़े से सवारों को लेकर बलूजी क़िले पर टूट पड़े और बड़ी बहादुरी से लड़ते हुए अमरसिंहजी के शव को किले से बाहर निकाल लाये और हाडी रानी को सौंप दिया। रानी ने

* राजस्थानी बातां (पृ० ४८-९) श्री सूर्यकरण पारीक

अपने आपको अग्नि-ज्वालाओं के हवाले कर दिया। उस प्रसंग का निम्नलिखित दोहा राजस्थान में प्रसिद्ध है—

बलू पयंपै बेलियाँ, सतियाँ हाथ सँदेश।
पालि वड़ा पतिसाह री, आवां छां अमरेस॥

अर्थात बलू सतियों के हाथ संदेश भेजता है कि हे अमरसिंह! शाही सेना को भगा कर मैं शीघ्र ही आ रहा हूँ।

अंत में शत्रु-सेना के साथ बड़ी वीरता से लड़ते हुए बलूजी सदा के लिए रण शय्या पर सो गये।

एक राजस्थानी गीत की निम्नलिखित पंक्तियों में बलूजी के मुख से क्या ही क्षत्रियोचित उक्ति कहलवाई गई है:—

"चक्रवतियाँ आखै चाँपावत, मंडियाँ मरण तणो नीमन्त।
भाजाड़णो हाथ भगवत रै, (तो) भाजाड़ो मोनैं भगवन्त॥"

अर्थात् चाँपावत बलू चक्रवर्ती राजाओं से कहता है कि युद्ध का निमित्त उपस्थित हो जाने पर यदि भगाना भगवान के हाथ में है तो वह मुझे भगा सके तब मै जानूँ।

एक निर्भीक योद्धा के अतिरिक्त इस प्रकार की चुनौती भगवान तक को और कौन दे सकता है?

(८६)

चाँपा मारवाड़ के राव रणमल्लजी का पुत्र था। वि० सं० १५१६ में गोडवाड़ प्रान्त के सींधल, बालिया और सोनगरों ने

मिल कर इसकी गायें पकड़ ली थीं किन्तु इसने अपने अद्भुत पराक्रम से तीनों की सम्मिलित सेनाओं को परास्त कर उन्हें वापिस छुड़वा लिया। वि० सं० १५२२ में मांडू के सुलतान महमूद खिलजी ने गुजरात होकर दिल्ली जाते हुए चाँपा पर आक्रमण कर दिया। इस युद्ध में चाँपा ने सुलतान के दाँत खट्टे कर दिये थे।

वि० सं० १५३६ में महाराणा रायसिंहजी की सहायता से सींधल राजपूतों ने चाँपा पर चढ़ाई की। शत्रुओं के बड़े बड़े वीरों को तलवार के घाट उतार कर यह योद्धा धराशायी हुआ। इस विषय का निम्नलिखित दोहा प्रसिद्ध है:—

मांस पलंचर सीस हर, हंस अपच्छर सत्थ।
चांपो चांपा फूल ज्यूँ, होग्यो हत्थो हत्थ॥

अर्थात् चांपा का मांस तो मांसभक्षी पक्षी ले गये, शीश महादेवजी ने ले लिया, जीव अप्सराओं के साथ चला गया। इस प्रकार चाँपा चंपा पुष्प की तरह हाथों हाथ लुट गया!

(६०)

उदयपुर के महाराणा जगतसिंह दानवीरता के लिए राजस्थान में अत्यन्त प्रख्यात हैं। उनकी लड़की का विवाह बूंदी के राव शत्रुशाल हाड़ा के साथ हुआ। इस विवाह में लाखों रुपये इनाम आदि में खर्च हुए। शत्रुशाल ने भी इस

अर्थात् विद्या और कुल में विख्यात हे बाँकीदान ! तेरे बिना राज-काज की प्रत्येक गुप्त बात किसके आगे कहूं ?

इन्हीं महाराज द्वारा चारण जाति की प्रशंसा में कहा हुआ निम्नलिखित पद्य प्रसिद्ध है:—

"करण मुकर महलोक कतारथ, परमारथ ही दियण पतीज ।
चारण कहण जथारथ चौड़े, चारण बड़ा अमोलख चीज ॥"

अर्थात् पृथ्वीलोक को कृतार्थ करने, परमार्थ की प्रतीति दिलाने और यथार्थ बात को स्पष्ट कहने के लिए चारण लोग बड़ी अमूल्य वस्तु हैं ।

(६४)

महाराणा अजीतसिंह ने पाली के ठाकुर मुकुन्ददास चाँपावत राठौड़ को धोखे से मरवा डाला । इस हत्याकाण्ड को घटित करने वाले थे छिपिया के ठाकुर प्रतापसिंह ऊदावत और कूंपावत सबलसिंह । मुकुन्ददास के दो स्वामिभक्त राजपूत गहलोत भीमा और धन्ना ने प्रतापसिंह को मार कर बदला लिया और आप भी लड़ते हुए काम आये । इस घटना के सम्बन्ध में निम्नलिखित सोरठे प्रसिद्ध हैं—

आजूणी अधरात, महलज रूनी मुकन री
पातल री परभात, भली रुवाणी भीमड़ा ॥१॥
पाँच पहर लग पौल, जड़ी रही जोधाण री
रैंगढ़ ऊपर रौल, भली मचाई भीमड़ा ॥२॥

घाँपा ऊपर चूक, ऊदा कदे न आदरै।
धन्ना वाली धूक, जण जण ऊपर जूझवै ॥३॥

अर्थात आज आधी रात को मुकुन्ददास की स्त्रियाँ रोईं तो प्रातःकाल प्रतापसिंह की औरतों को हे भीमड़ा ! तूने अच्छा रुलाया ! ॥१॥

जोधपुर के दरवाजे पाँच पहर तक बन्द रहे। हे भीमड़ा ! किले में तूने अच्छा कोलाहल मचाया ॥२॥

चाँपावतों पर ऊदावत कभी चूक नहीं करेंगे क्योंकि हर एक के दिल पर धन्ना का रोब गालिब हो रहा है ॥३॥

धन्ना और भीमा—इन दो स्वामिभक्त सरदारों की प्रशंसा में कहा हुआ निम्नलिखित दोहा तो और भी मार्मिक हुआ है—

भीमा धन्ना सारखा, दो भड़ राख दुबाह।
सुण चांदा सूरज कहै, राह न रोकै राह॥

अर्थात् सूर्य चन्द्रमा से कहता है कि भीमा और धन्ना जैसे दो बहादुर योद्धा यदि सदा पास रखे जायँ तो राहु ग्रह भी कभी रास्ता नहीं रोकेगा !

(६५)

मल्हराज गौड़ ने एक चारण को अरब पसाव का दान दिया था। चारण ने राजा की प्रशंसा में कहा—

देता अरब पसाव दत, वीर गौड़ बछराज
गढ़ अजमेर सुमेर सूँ, ऊँचो दीसै आज ॥

अर्थात् हे बछराज ! अरब-पसाव का दान दिये जाने से अजमेर का किला आज सुमेरु पर्वत से भी ऊँचा दिखलाई पड़ता है।

(९६)

उदयपुर के महाराणा साँगा जैसे वीर थे, वैसे ही दानी भी थे। कहते हैं कि उन्होंने चित्तौड़ का राज्य महियारिया गोत्र के हरिदास नामक एक चारण को दान में दे दिया था जिसके प्रमाण स्वरूप एक गीत की निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं:—

किव राणा कीधा कैलपुरा,
हिंदवाणा रिव बिया हमीर ॥

अर्थात् हे कैलपुरा ! हिन्दुओं के सूर्य दूसरे हम्मीरसिंह ! तूने चित्तौड़ का राज्य देकर कवियों को राजा बना दिया।

(९७)

हेला नगर पर विजय प्राप्त कर लेने के बाद किसी कवि ने महाराज मानसिंह की प्रशंसा में कहा था—

जात जात गुन अधिक हो, सुनी न अजहूँ कान।
राघव बारिधि बांधियो, हेला मारयो मान ॥

अर्थात् पूर्वज से सन्तान का गुण अधिक हो, यह कान से नहीं सुना था। लंका जाने के लिए रामचन्द्रजी को तो समुद्र बाँधना पड़ा था किन्तु मानसिंह ने हेला शहर को मारा; यह काम अपेक्षाकृत और भी कठिन था।

(६८)

सिद्धराज जयसिंह के समकालीन जूनागढ़ के रा' नवघण द्वितीय ने मरते समय अपने पुत्रों से चार वचन माँगे थे। उसके सबसे छोटे पुत्र रा' खेंगार द्वितीय (सन् १०६८-११२५) ने प्रतिज्ञा की कि मैं अपने पिता द्वारा अधूरे छोड़े हुए चारों काम पूरे कर दिखाऊँगा। पिता की मृत्यु के बाद खेंगार ने अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया। इन चारों कामों में से एक काम था, सिद्धराज जयसिंह के कुल के चारण के गाल फाड़ना जिसने रा' नवघण की निन्दा की थी। इस कार्य को खेंगार ने बड़ी चतुराई से पूरा किया था। सिद्धराज जब मालवा गया हुआ था तो खेंगार ने पट्टन पर चढ़ाई की और पूर्वी द्वार को तोड़ डाला। राणकदेवी (जिसके साथ सिद्धराज की मँगनी स्थिर हो चुकी थी) को भी खेंगार ले आया और उसके साथ अपना विवाह कर लिया। यह देख कर सिद्धराज के चारण ने खेंगार की प्रशस्ति में अनेक पद्य कहे। खेंगार ने चारण का मुँह अपने बहुमूल्य रत्नों से भर दिया। अंत में चारण ने कहा—रहने दो बाबा, अब तो गाल फटने लगे!

इसके बाद सिद्धराज ने जूनागढ़ पर चढ़ाई की; १२ वर्षों तक वह लड़ता रहा किन्तु उसे सफलता न मिली। अंत में खेंगार के कुछ आदमी सिद्धराज की ओर चले गये। जूनागढ़ के किले में प्रवेश के लिए एक गुप्त मार्ग था जिसका पता सिद्धराज को इन आदमियों से मिल गया। सिद्धराज ने खेंगार को मार डाला और राणकदेवी को भी ले गया। सिद्धराज राणकदेवी को फुसला कर उसके साथ विवाह करना चाहता था किन्तु राणकदेवी किसी भी तरह राजी न हुई। तब सिद्धराज ने राणकदेवी के पुत्र माणेरा को (जिसकी अवस्था केवल ११ वर्ष की थी) मार डालना चाहा। कहते हैं, जब माणेरा को पकड़ने का प्रयत्न किया गया तो वह रोता हुआ अपनी माता के पीछे जाकर छिप गया। उस समय खेंगार की वीरपत्नी राणकदेवी ने कहा—

माणेरा मत रोय, मत कर रत्ती अंखियाँ।
कुल में लागे खोय, मरतां मा न सँभारिये॥

अर्थात् हे माणेरा! रो नहीं, अपनी आँखें लाल न कर; मरते समय अपनी माता को याद न कर। क्षत्रियपुत्र होकर यह तू क्या कर रहा है? ऐसा करने से तुम्हारे कुल में कलंक लगता है।

माणेरा मार डाला गया और अंत में राणकदेवी अपने वीर पति खेंगार के साथ सती हो गई।

खेंगार की प्रशंसा में कहा हुआ निम्नलिखित दोहा उल्लेखनीय है—

जे साँचे सोरठ घड़्यो, घडियो रा' खेंगार।
ते साँचो भांगी गयो, जातो रह्यो लुहार॥

(६६)

बीजाणंद के माता-पिता उसे बाल्यावस्था में ही छोड़ कर स्वर्गवासी हो गये थे। वह दूसरों के ढोर चरा कर किसी तरह अपना जीवन बसर किया करता था। परन्तु भगवान ने उसे बड़ा मधुर कंठ दिया था। एक बार इसने दो तूंबों तथा एक पोले बाँस का टुकड़ा लेकर बीन तैयार करली और जब कभी समय मिलता, वह तारों की झंकार में तन्मय हो जाता। समय पाकर वह बीन बजाने में इतना दक्ष हो गया कि छत्तीसों राग-रागिनियाँ उसके सामने मानों हाथ जोड़े खड़ी रहतीं।

एक बार बीजाणंद गोरवियाली नामक एक गाँव की सीमा पर पहुँचा। पानी पीने के लिए एक कुएँ पर गया जहाँ एक युवती पानी भर रही थी। बीजाणंद ने उससे पानी माँगा किन्तु उसकी कुरूपता को देख कर उस रमणी ने उसे पानी पिलाने से इन्कार कर दिया। बीजाणंद गाँव में गया और संयोग से इसी तरुणी के पिता वेदा नामक मालदार चारण के यहाँ ठहरा। रात को बीजाणंद ने जो अपनी बीन बजाई तो सब मंत्र-मुग्ध-से हो रहे। वेदा की पुत्री शेणी भी दीवार के पीछे से संगीत सुन रही थी।

जिस शेणी ने बीजाणंद को कुरूप समझ कर पानी पिलाने तक से इन्कार कर दिया था, वही उसके संगीत से मुग्ध होकर उसे अपना हृदय-समर्पण करने के लिए तैयार हो गई। बीजाणंद वेदा के घर बहुधा आने-जाने लगा। वहाँ उसकी बड़ी आव-भगत होती। एक दिन प्रसन्न होकर वेदा ने बीजाणंद से कहा—मेरे यहाँ इतनी गाय-भैंसें हैं, ऋद्धि-सिद्धि है, तुम्हारी जो इच्छा हो माँगलो। बीजाणंद ने कहा—मैं जो तुमसे माँगूंगा वह देते न बनेगा। वेदा जब वचन-बद्ध हो गया तो बीजाणंद ने कहा—मैं शेणी के साथ पाणि-ग्रहण करना चाहता हूँ! यह सुन कर वेदा आगबबूला होकर कहने लगा—छोकरे, यह भी कोई माँगने का ढंग है? क्या तुम यह समझते हो कि मैं अपनी लड़की को तुम्हारे जैसे अनाथ और भटकते भिखारी के साथ कर दूँगा? "मेरी भूल हुई", यह कह कर बीजाणंद बिना खाये पिये चल निकला। समस्त चारण-मंडली ने वेदा को उपालम्भ देते हुए कहा कि यदि दिये हुए वचन का निर्वाह नहीं कर सकते थे तो वचन दिया ही क्यों था? वेदा ने इस कथन की सत्यता का अनुभव किया; बीजाणंद को वापिस बुला कर उसने कहा कि यदि आज से एक वर्ष के भीतर भीतर तू १०१ नवचंदी भसें लाकर मुझे दे देगा तब तो शेणी का विवाह तुम्हारे साथ कर दूँगा; नहीं तो मुझे मुँह भी न दिखाना।

बीजाणंद को अपनी संगीत-शक्ति पर विश्वास था। वह नवचंदी भैंसें प्राप्त करने के लिए गाँव गाँव लोगों को बीन बजा

कर रिझाता । लोग उसे मनचाहा वरदान माँगने के लिए कहते और वह नवचदी भैंसें माँगता किन्तु इस प्रकार की भैंसें आवें कहाँ से ? जिनके चारों पैर सफेद हों, पुच्छाग्र के बाल श्वेत हों, एक एक स्तन जिनके धवल हों, ललाट पर श्वेत तिलक हो, मुँह सफेद हो और एक एक आँख श्वेत हो—इस प्रकार की श्वेतरंगी चन्द्र-चिह्न वाली भैंसें नवचन्दी कहलाती हैं ।

दिन पर दिन बीत चला, अवधि के कुछ ही दिन बाकी रह गये। अंत में वाट देखते-देखते अंतिम दिन भी आ पहुँचा ।

वरस वल्यां बादळ वल्यां, धरती लीलाणी
बीजाणंद रै कारणै, शेणी सूखाणी ॥

वर्ष भी वापिस आ गया, बादल भी लौट आये, (धरा और बादल के परस्पर मिलन से) पृथ्वी भी हरी-भरी हो गई किन्तु बीजाणंद के बिना एक शेणी ही झूर झूर कर सूख गई !

अवधि का जब अंतिम दिन था, शेणी उसी कुएँ पर गई जहाँ बीजाणंद ने उससे पानी माँगा था। आज वह मन ही मन कह रही थी कि यदि आज बीजाणंद आ जाय तो उसे जी भर कर पानी पिलाऊँ ! किन्तु अवधि का वह दिन भी बीत चला और बीजाणंद न लौटा । रात तो ज्यों त्यों करके शेणी ने काटी । प्रातःकाल अपने पिता के पास गई और बोली—मैंने हिमालय जाकर गलने का निश्चय कर लिया है । पिता ने कहा—बेटी, इस अवस्था में यह कैसा वैराग्य ? मैं तो अब

तुम्हारे संबन्ध के लिए अच्छा ठिकाना देखने की फिराक में हूँ। इस पागलपन को छोड़। शेणी ने उत्तर दिया—

चारणिया लख चार, बांधव कह बोलाविये
बीजा री वरमाल, औरां गल ओपै नहीं ॥

अर्थात् बीजाणंद को छोड़ कर अन्य सब चारण मेरे बन्धु हो चुके; जिस वरमाला को मैं बीजाणंद के गले में डालने का निश्चय कर चुकी हूँ वह दूसरे के गले में शोभा नहीं देती।

१८ वर्ष की शेणी हिमालय के लिए चल पड़ी। कहते हैं जब हिमालय पहुँच कर वह गलने के लिए बैठी तो गलने न पाई। पांडव जैसे सबल और बलिष्ठ योद्धा जिस हिमालय में गल गये थे, वहाँ नवनीत के समान कोमलांगी शेणी ज्यों की त्यों रही; उसके शरीर को कोई क्षति नहीं पहुँची। तब शेणी ने पर्वतराज से प्रार्थना की—हे पिता, मुझे अपनी शरण में ले। तब हिमालय ने उत्तर दिया—बेटी, तू कुमारी है; यहाँ कोई अकेला नहीं गल सकता। शेणी ने बीजाणंद का पुतला बना कर उसे अपने पति के रूप में वरण कर लिया। पुतले को गोद में लेकर शेणी बर्फ में बैठ गई। थोड़ी देर पहले जिन पैरों से कुंकुमवर्णी आभा फूटी पड़ती थी, वे पैर अब काले पड़ गये, उनकी चेतना जाती रही। इतने में शेणी! शेणी! की आवाज सुनाई दी। शेणी के पास पहुँच कर बीजाणंद ने कहा—एक दिन की देर हो गई, तुम्हारे पिता को १०१ नवचंदी भैंसें देकर

आया हूँ। शेणी ! अब लौट चलो । शेणी ने कहा—घुटनों तक मेरा अंग गल चुका है । ऐसी अवस्था में तुम्हारे लिये मैं भार-रूप नहीं बनना चाहती । वीजाणंद ने उत्तर दिया—कोई चिन्ता नहीं ।

वल रे वीदा री, पांगली होय धण पालसों ।
कावड़ कांध करेह, जात्रा तुझ ले जावसों ॥

अर्थात् हे वेदा की पुत्री ! यदि तू पंगु हो गई है तो भी कंधे पर कावड़ रख कर मैं तुझे अपने साथ यात्रा (तीर्थ) के लिए ले चलूँगा ।

'नहीं वीजाणन्द ! अब वह नहीं हो सकता ।'

गलियौ आधौ गात, आधा में आधो रह्यौ ।
हमें मसलता हात, वीझाणंद पाछा वलौ ॥

अर्थात् हे वीजानन्द ! अब तो शरीर का पौन अंश गल चुका है; अब निष्फल प्रयत्न न कर घर लौट जाओ । पर चारण ! एक कामना बच रही है; अंतिम बार अपनी बीन बजा कर सुनादे ।

वीजा जंत्र बजाड़, हेमाजल हलो दिये ।
मोह्या मच्छीमार, मोही जल री माछली ॥

वीजाणंद ने बीन हाथ में ली । हिमालय हुंकारा देने लगा, जाल डालते हुए मछलीमार स्तब्ध की तरह ज्यों के त्यों रह गये,

मछलियाँ मानो संगीत सुनने के लिए जल के बाहर मुँह निकाल कर खड़ी रह गई !

बीन की मोहक ध्वनि सुनते सुनते ही सेणी के शरीर की चेतना लुप्त हो गई !

प्रेमियों की जीवन-गाथा का क्या यही दुःखद अवसान है ? एक ओर मीरां की दर्दभरी पुकार है—

जो मैं ऐसा जाणती, प्रीत करे दुख होय ।
नगर ढिंढोरा पीटती, प्रीत करे ना कोय ॥

तो दूसरी ओर टेनीसन कहते हैं—

"It's better to have loved and lost
Than never to have loved at all."

प्रेम के इस रहस्य को भला कोई कैसे समझावे ?

['राजस्थानी लोक-साहित्य में सेणी और बीजाणंद के संबन्ध में' बहुत से दोहे व सोरठे प्रचलित हैं जिनमें से कुछ नीचे दिये जाते हैं:-]

कंकूंवरण[1] कलाइयाँ, चूड़ी रत्तड़ियांह[2]
बीझा गल बिलमी नहीं, बालूं बांहड़ियांह ॥१॥

---

१ कंकुम (केशर) रे रंग की २ लाल ।

सिंधड़ी रा सौदागरां, सेणल रा सैणांह ।
धींफल आगल़ बाँचज्यो, त्रिध रुड़ी त्रैणांह ॥२॥

तरकस लंबा तीर, काबल रा तुरकां कनै ।
सैणी तणौ सरीर, धींफल बेतूं बाहरयौ ॥३॥

धींफा बाड़ पलासरी, खंखेरी खर जाय ।
नुगणां मानव सेवियां, पत सुगणां री जाय ॥४॥

धींफा हूँ दिलखी फिरूँ, दव री दाधी बेल ।
वणजारा री आग ज्यूं, गयो धकंती मेल ॥५॥

बीजड़ हल्लो हालियो, [3]अलल बछेरा लेह ।
सूँगा मूँघा [4]बेंचने, वेगी बलण करेह ॥६॥

इण थलवट में क्यों नहीं, सिरजी बावड़ियो ।
बीजो धोवत धोतियाँ, पग दै [5]पावड़ियो ॥७॥

इण थलवट में क्यों नहीं, सिरजी [6]बावलियो ।
बीजो चरत [7]करहला, [8]बाढत कांवड़ियो ॥८॥

इण थलवट में क्यों नहीं, सिरजी नींबड़ियो ।
बीजो चारत करहला, [10]बलती छाँहड़ियो ॥९॥

---

३ चंचल ४ बेच कर ५ सीढ़ियों पर ६ बबूल ७ ऊँट ८ काटता
९ हेत १० दलती हुई ।

सैणी देय संदेसड़ा, हेमाजलि हूंता
सरवरि आव्यो पावणां, वीजाणंद वलता ॥१०॥
सर भरियो पंखेरुवां[1], भरिया नदो निवांण[2] ।
सैणी दियै संदेसड़ा, ऊभी तट महरांण[3] ॥११॥
नो सीरष[4] दस सीरषां, तोइ थाढी मरूंह ।
कोइक बीजाणंद आवतो, एकणि चीर रहूंह ॥१२॥
ओ आंबा[5] ! ओ आंबली[6], गोरडियालो गॉंव ।
बीजड़ ने वरवा[7] तणी, (म्हारै) हियै ज रैगो हांम[8] ॥१३॥
हल रे हीमाला, पांणी ना परवत थया[9] ।
बड़ तंबड़ वालाह, आज वालो[10] सीलण वीसरै ॥१४॥]

(१००)

कई सौ वर्ष पहले अवन्ती के एक साधु ने गहरी सॉंस लेते हुए कहा था—

तिक्खा तुरिय न माणिया
भड सिरि खग्ग न भग्गु,

---

१ पक्षियों से २ निम्नस्थल ३ समुद्र ४ बिस्तर ५ ओम ६ इमली ७ वरण करने की ८ इच्छा, हविस ९ हुआ १० प्यारी

एह जम्म नग्गहं गयउ,
गोरी कंठि न लग्गु ॐ

यही प्राचीन पद्य राजस्थानी भाषा में निम्नलिखित रूप में अवतरित हुआ है:—

तीखा तुरी न माणिया, भड़ सिर खग्ग न भग्ग।
जलम अकारथ ही गयो, गोरी गले न लग्ग ॥

अर्थात् तेज घोड़ों को यदि खेलाया नहीं, योद्धाओं के गले पर यदि तलवार का वार नहीं किया और यदि सुन्दरी स्त्री को गले नहीं लगाया तो यह जन्म व्यर्थ ही गया !

(१०१)

निम्नलिखित दोहे में वीर की प्रकृति का अच्छा चित्रण हुआ है—

सादूलो आपै समो,
बियो न काय गिणन्त ।
हाक बिराणी किम सहै,
घण गाजियाँ मरन्त ॥

अर्थात् शार्दूल अपने सामने दूसरे को कुछ नहीं समझता। दूसरे की ललकार को तो वह सहे ही क्या ? ,यदि बादल को भी

ॐ चारणो अने चारणी साहित्य पृ० ११६

वह गरजता हुआ सुन लेता है तो भी वह सिर पटक-पटक कर अपने प्राण दे देता है।

जब-जब मैं उक्त दोहे के अर्थ पर विचार करता हूँ, भारत के उस महत्वपूर्ण ऐतिह्य का चित्र मेरी आँखों के सामने नृत्य करने लगता है जिसमें दो नर-शार्दूलों ने अपने वीर-स्वभाव का अद्भुत प्रदर्शन किया है। प्रवाद प्रचलित है कि एक दिन धोलहर के जसराज हाला और हलवद (अहमदाबाद से चालीस कोस पर झालों का निवासस्थान) के झाला रायसिंह चौपड़ खेल रहे थे। उस समय एक व्यापारी जसराज के गाँव धोलहर की सीमा में होकर नगाड़ा बजाता हुआ आगे जा रहा था। हाला ने कहा—अरे, कौन है यह जो मेरे गाँव की सीमा में होकर मृदंग-ध्वनि करता जा रहा है? कौन है वह जो दुःसाहस करके मृत्यु को निमन्त्रण दे रहा है? मैं अभी युद्धार्थ प्रस्तुत होता हूँ। सईस को कहो, मेरा युद्ध का घोड़ा कस कर तैयार करे और सेनापति सैनिकों को लेकर उपस्थित हो।

यह सुन कर झाला रायसिंह कहने लगे—आप भी कैसी अनहोनी बात करते हैं! यह तो रास्ते का गाँव है; न जाने कितने यात्री इस मार्ग से आते जाते रहेंगे—आप भी किस-किससे लड़ाई मोल लेंगे? किन्तु जसराज जब अपनी बात पर अड़े रहे तब रायसिंह झाला कहने लगे कि आप लड़ाई नहीं लड़ सकेंगे। इस पर जसराज हाला ने ताना देते हुए

कहा कि ज्ञात पड़ता है, आप भी मेरी सीमा में नगाड़ा बजा-येंगे। रायसिंह ने कहा कि यदि मैं सच्चा राजपूत हूँ तो अवश्य ही आपकी सीमा में आकर नगाड़ा बजाऊँगा। जसराज ने कहा कि यदि ऐसा होगा तो परस्पर युद्ध अवश्यंभावी है और उस युद्ध में आपकी कुशल भी नहीं। झाला ने कहा कि कुशल या अकुशल का निर्णय तो भविष्य करेगा किन्तु यह विश्वास रखिये कि सच्चा राजपूत युद्ध से कभी पराङ्मुख नहीं होता; युद्ध तो उसका व्यसन है और लड़ते-लड़ते वीर-गति को प्राप्त होने में वह गौरव का अनुभव करता है। जसराज से बिदा मांगते समय रायसिंह ने नगाड़ा बजाने की अपनी प्रतिज्ञा को फिर दृढ़तापूर्वक दोहरा दिया। हाला-झाला में परस्पर साले-बहनोई का सम्बन्ध था। किसी किसी का मत है वे परस्पर मामा-भानजा होते थे। किन्तु कुछ भी हो, राजपूत वीर यदि एक बार वचन-बद्ध हो जाता है तो वह सब प्रकार के सम्बन्धों को ठुकरा कर अपने वचन की रक्षा करता है। राजस्थान में 'मरद तो जब्बान बंको' लोकोक्ति के रूप में प्रचलित है। रायसिंह झाला ने प्रतिज्ञानुसार सेना सजायी। वह दो हज़ार सवार और करीब इतने ही पैदल सैनिक लेकर चला और हाला के गाँव की सीमा में प्रवेश करते ही उसने नगाड़ा बजवाया। जसराज भी तुरन्त अपनी सेना सजाकर युद्ध के लिए प्रस्तुत हुआ किन्तु रायसिंह ने जसराज की सेना देखकर कहा कि अभी तुम्हारे पास सेना थोड़ी है जब युद्ध

के लिए भलीभाँति तैयारी कर पूरी सेना सजाकर आओगे, तभी युद्ध का आनन्द आयेगा और कोई यह भी न कहने पायेगा कि झाला ने अचानक आक्रमण कर हाला को परास्त कर दिया। समान सैन्य-दल और तुल्य-शौर्यवाले योद्धाओं का युद्ध ही वास्तव में युद्ध कहलाता है। जसराज हाला इससे सहमत हुआ और विशेष रूप से सैन्य-संघटन करने में लगा।

यश की इच्छा मनुष्य की सहजात प्रवृत्ति है। वह किसी-न-किसी रूप में अपने आपको जीवित रखना चाहता है। कुछ मनुष्य सुयोग्य पुत्र के रूप में, कुछ ताजमहल जैसे स्मारक के रूप में, और कुछ काव्य के रूप में और कुछ दिग्विजयी के रूप में अपना अमर नाम छोड़ जाना चाहते हैं। हाला-झाला—दोनों वीरों के हृदय में भी यह भावना उत्पन्न हुई कि यदि कोई कवीश्वर उनकी युद्धवीरता का वर्णन कर उनको अमर कर दे तो युद्ध में प्राणत्याग करते समय उनको अपार हर्ष होगा। और वस्तुतः देखा जाय तो रस-सिद्ध कवीश्वर ही अपनी काव्य-प्रतिभा के बल से वीरों को अमर कर जाते हैं। उदयपुर के महाराणा राजसिंहजी द्वारा रचित एक छप्पय में यह भाव बड़े मार्मिक शब्दों में प्रकट हुआ है—

कहाँ राम कहाँ लखण
नाम रहिया रामायण।

कहाँ कृष्ण बलदेव प्रगट
भागोत पुरायण ।
वालमीकि सुक व्यास
कथा कविता न करन्ता ।
कुण सरूप सेवता ध्यान
मन कवण धरन्ता ।
जग अमर नाम चाहो जिके
सुणो सजीवन अक्खरां ।
राजसी कहे जगराण रो
पूजो पाँव कवेसरां ॥

अर्थात् कहाँ हैं आज राम और लक्ष्मण; रामायण ने ही उनके नाम को अमर कर रखा है। कृष्ण-बलराम भी आज नहीं रह गये हैं किन्तु जब तक भागवत पुराण है तब तक उनका नाम अमिट है। यदि वाल्मीकि, शुकदेव और व्यास कथा और कविता न करते तो कौन रामकृष्ण आदि के स्वरूप की सेवा करता और कौन ध्यान धरता ? महाराणा जगत-सिंह का पुत्र राजसिंह कहता है कि इन प्राणवन्त अक्षरों में सुनो—'यदि संसार में अपना नाम अमर कर जाना चाहते हो तो कवीश्वरों के चरणों की पूजा करो।'

इसी अमर यश-लिप्सा की भावना से प्रेरित होकर उक्त दोनों वीर 'हरिरस' के रचयिता सुप्रसिद्ध कवि और महात्मा

श्री ईश्वरदासजी के पास पहुँचे। ईश्वरदासजी ने कहा कि मैं तो अब वीररस की कविता नहीं करता, 'प्राकृतजन-गुणगान' करना मैंने अब छोड़ दिया है। अब मैं केवल भक्ति-सम्बन्धी पद ही बनाता हूँ जिनमें अपने आराध्य देव के महत्त्व का वर्णन करता हूँ। सामान्य नर-काव्य में अतिशयोक्ति से काम लेना पड़ता है और उससे झूठ को प्रश्रय मिलता है। हाला-झाला ने श्री ईश्वरदासजी से आग्रह-पूर्वक निवेदन किया कि आप अतिशयोक्ति और मिथ्या को छोड़ कर जैसा देखें वैसा ही युद्ध का वर्णन करने की कृपा करें। कवि ने इस शर्त पर कविता रचना स्वीकार कर लिया। कहा जाता है कि उक्त दोनों वीरों के युद्ध पर ७०० कुण्डलियाँ कवि ने लिखीं जो 'हाला-झाला रा कुंडलियाँ' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इस युद्ध में हाला की मृत्यु हुई और रायसिंह झाला विजयी हुआ। उदाहरण के तौर पर प्रथम कुण्डलिया यहाँ उद्धृत की जाती हैं।

कुछ विद्वानों का मत है कि इन कुंडलियों के लेखक बारहठ श्री आशानन्द हैं और इनकी संख्या के सम्बन्ध में भी बहुत कुछ मतभेद है। ५५ कुण्डलियाँ मेरे देखने में आई हैं।

'हालाँ झालाँ होवसी
सीहाँ लत्थो-बत्थ
पैलाँ धर अपणावसी
(कै) धर अपणी परहत्थ।

करै धर आपणी
पारकी तिके नर
केवियाँ सीस खग
पाण करणां कच
सत्रहराँ नार नहँ
नींद भर सोर
हल - घलों सही
हालों घरे होयर

लेखक की पुस्तकें—

—: प्रकाशित :—

१ राजस्थान के ऐतिहासिक प्रवाद

२ समीक्षांजलि

३ चौबोली (राजस्थानी साहित्य की चार चुनी कहानियों
—पं. पतराम गौड़, एम. ए. की सहकारिता में संपादि

शीघ्र प्रकाशित होनेवाली

४ राजस्थानी कहावतें (बंगाल हिन्दी मण्डल द्वारा पुरस्

५ आलोचना के पथ पर (जिसमें उच्चकोटि
के साहित्यिक लेख
भूमिका लेखक— पं० नन्ददुलारे वा

६ वीर सतसई (पं० पतराम गौड़, एम. ए. की सहकारिता

७ राजस्थान के विसहर

